शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 9 अंक : 1 1 अगस्त 2016

(श्रावण-भाद्रपद, विक्रम संवत् 2073)

संरक्षक
मुकुन्द कुलकर्णी
प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. नाथू लाल सुमन
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल
नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष: 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष: 011-22914799

E-mail:
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at:
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक
में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल
का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शिक्षक और शिक्षातन्त्र ❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

1985 में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित शिक्षा की चुनौतियाँ दस्तावेज में कहा गया है कि शिक्षकों का चयन योग्यता के आधार पर नहीं होता। इस कारण बड़ी संख्या में ऐसे लोग शिक्षक बन जाते हैं जिनमें शिक्षण की क्षमता व प्रवृति नहीं होती। शिक्षण प्रशिक्षण के लिए चुनते समय भावी शिक्षक में संकल्पनात्मक स्पष्टता, जिज्ञासा, पहल करने की क्षमता, वैज्ञानिक प्रवृति, शारीरिक दक्षता, भाषिक कौशल, प्रभावी वक्ता व लेखन के गुणों की जाँच नहीं की जाती है। शिक्षक के संप्रेषण कौशल के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता जो शिक्षक का कार्य करने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है।

6

अनुक्रम

4.	शिक्षक चयन व प्रशिक्षण की चुनौतियाँ	– सन्तोष पाण्डेय
8.	अध्यापक शिक्षा में चुनौतियाँ	– बजरंगी सिंह
10.	गुणात्मक शिक्षा के लिए सुप्रशिक्षित शिक्षक	– बजरंग प्रसाद मजेजी
12.	सामाजिक उत्थान के लिए हो शिक्षक-प्रशिक्षण	– डॉ. रेखा भट्ट
14.	शैक्षिक अंत:जनन से शैक्षिक अवनयन	– प्रो. मधुर मोहन रंगा
17.	प्राचीन गुरु ही सच्चा आदर्श	– डॉ. ओम प्रकाश पारीक
20.	विश्वविद्यालयों में आचार्यों का चयन	– डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल
25.	Selection and Training of Teachers	– Dr. A. K. Gupta
27.	दीनदयाल जी का एकात्म अर्थचिन्तन	– डॉ. बजरंगलाल गुप्त
33.	महाशक्ति बनना है तो शिक्षा में लायें क्रांति	– वेदप्रताप वैदिक
35.	भावी पीढ़ी के साथ खिलवाड़	– जगमोहन सिंह राजपूत
37.	क्यों नहीं जागता हमारा राष्ट्रीय गौरव	– साकेन्द्र प्रताप वर्मा
39.	गतिविधि	

Educating the Educators ❑ Dr. TS Girishkumar

There is no doubt that the curricula and education those we programme should be compatible with education and curricula all over the world. But we have to create and make our Sanskriti education a reality, a thriving functional reality. Once our Sanskriti and Parampara are effectively taught to our future generation, the possibility to the three companies destroying our education shall be considerably less. Many of us are influenced by the three companies because of our ignorance of what we really are. In one word, the whole thing thrives on our un-knowledge of the reality with our own selves.

22

शिक्षक चयन व प्रशिक्षण की चुनौतियाँ

❑ सन्तोष पाण्डेय

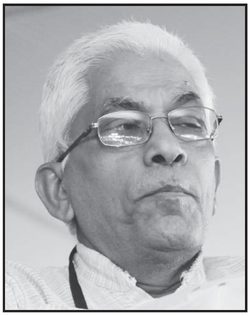

भारतीय संदर्भ में एक आदर्श शिक्षक की कल्पना की गई है। एक शिक्षक सेवाभावी होने के साथ-साथ सकारात्मक दृष्टिकोण से युक्त, आशावादी व रचनात्मक प्रवृत्तियों से युक्त होना चाहिये व छात्रों में इन्हें समाहित करने वाला विभिन्न प्रवृत्तियों में समन्वय व सन्तुलन बनाने में सक्षम होना चाहिये। वह मानवीय संवेदनों की समझ रखने वाला तथा संवाद सम्प्रेषण में कुशल होना चाहिये। समाज में शिक्षा के अतिरिक्त भी उत्पादन व्यवस्था में भौतिक वस्तुओं व सेवाओं के सृजन में मानव का उपयोग होता है। शिक्षा में 'मानवनिर्माण' होता है जिसमें उपर्युक्त गुणों का महत्त्व शैक्षिक उपलब्धियों से अधिक आवश्यक हो जाता है। नैतिक व सांस्कृतिक गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति ही समाज की भावी पीढ़ियों का निर्माण करने वाला व समाज को दिशा देने वाला बन सकता है।

संपादकीय

देश में शिक्षा का प्रसार द्रुत गति से हो रहा है। एक ओर शिक्षा में कला वाणिज्य व विज्ञान के साथ-साथ ज्ञान की नई विधाओं के रूप में विविधता बढ़ रही है, तो दूसरी ओर शिक्षा की गुणवत्ता में भारी सुधार की अपेक्षा एक राष्ट्रीय आवश्यकता बन गई है। वैश्विक प्रतियोगिता की दृष्टि से भी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार अति आवश्यक है। इस दृष्टि से एक ओर भौतिक संसाधनों की महती आवश्यकता है, तो वहीं योग्य कर्तव्यपरायण, उत्साह से युक्त शिक्षा व छात्र के प्रतिबद्ध व पूर्ण समर्पण वाले शिक्षकों की भूमिका भौतिक संसाधनों से कहीं अधिक आवश्यक है। देश भर में चाहे प्राथमिक शिक्षा हो या माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा सभी ओर सीखने के स्तर में गिरावट व गुणवत्तारहित शिक्षा की समस्या एक बड़ी चुनौती है। गुणवत्ता से परिपूर्ण शिक्षा का अभाव देश में शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में बड़ी बाधा है । गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में आज सबसे बड़ी बाधा शिक्षक चयन की अनुपयुक्त व्यवस्था तथा शिक्षकों को शिक्षक तत्व से युक्त बनाने वाली शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था का अभाव है। ज्ञातव्य है कि किसी देश की शिक्षा का स्तर उसके शिक्षकों के स्तर से निर्धारित होता है। शिक्षक समाज निर्माण में सबसे बड़ी भूमिका निभाता है। इस भूमिका के निर्वाह के लिये शिक्षा के प्रति समर्पित शिक्षक उपलब्ध होने चाहिये। शिक्षा के प्रति समर्पित शिक्षक भारतीय संदर्भों (यहाँ संदर्भों से अभिप्राय समाज के भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक मूल्य व्यवस्था से है।) से युक्त गंभीर कठोर व सतत शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था से ही प्राप्त हो सकता है। यहाँ दो बातों पर बल है, प्रथम समर्पित शिक्षकों की प्राप्ति हेतु उपयुक्त शिक्षक चयन प्रक्रिया व भारतीय संदर्भों से युक्त शिक्षकों की आपूर्ति के लिये गहन शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था आज की संपूर्ण भारतीय शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौती भी समर्पित शिक्षकों के चयन व भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के सशक्त शिक्षक प्रशिक्षण की है। इन दोनों के अभाव के कारण ही आज देश भर में शिक्षकों की चयन व्यवस्था तथा प्रशिक्षण व्यवस्था के प्रति भारी असंतोष व्याप्त है। ऐसा नहीं है कि इनके लिये प्रयास नहीं हुये हैं। स्वतंत्रता के उपरान्त अनेकों आयोग, समितियाँ, विशेषज्ञ-दलों के प्रतिवेदन में शिक्षक की चयन प्रक्रिया व शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था को शिक्षा नीति में अनुरूप बनाने के प्रयास होते रहे हैं। तेजी से बदलती परिस्थितियों में समस्या का सटीक समाधान निकालने में विफल रहे हैं, एतदर्थ एक उपयुक्त शिक्षक चयन व शिक्षक प्रशिक्षण की नीति बनाना व उसके अनुरूप व्यवस्था किया जाना आवश्यक हो गया है।

भारतीय संदर्भ में एक आदर्श शिक्षक की कल्पना की गई है। एक शिक्षक सेवाभावी होने के साथ-साथ सकारात्मक दृष्टिकोण से युक्त, आशावादी व रचनात्मक प्रवृत्तियों से युक्त होना चाहिये तथा छात्रों में इन्हें समाहित करने वाला विभिन्न प्रवृत्तियों में समन्वय व सन्तुलन बनाने में सक्षम होना चाहिये। वह मानवीय संवेदनाओं की समझ रखने वाला तथा संवाद सम्प्रेषण में कुशल होना चाहिये। समाज में शिक्षा के अतिरिक्त भी उत्पादन व्यवस्था में भौतिक वस्तुओं व सेवाओं के सृजन में मानव का उपयोग होता है। शिक्षा में 'मानवनिर्माण' होता है जिसमें उपर्युक्त गुणों का महत्त्व शैक्षिक उपलब्धियों से अधिक आवश्यक हो जाता है। नैतिक व सांस्कृतिक गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति ही समाज की भावी पीढ़ियों का निर्माण करने वाला व समाज को दिशा देने वाला बन सकता है। परन्तु क्या आज विशाल आकार वाली शिक्षा व्यवस्था को उपयुक्त लक्षणों व आदर्शों के अनुरूप निर्मित करने में समाज सफल हो पा रहा है? यह एक चुनौती है जिसका समाधान भारतीय संदर्भों से युक्त शिक्षक चयन व प्रशिक्षण की व्यवस्था में निहित है। इस संदर्भ में भारत में शिक्षक चयन व प्रशिक्षण की व्यवस्था के अतीत में झाँकना उपयुक्त रहेगा।

भारत विश्व की सर्वाधिक प्राचीन संस्कृति है। प्राचीन काल में भारत में गुरुकुल व्यवस्था सर्वव्यापी थी, जहाँ अभिभावक उपयुक्त गुरुकुल व गुरु का चयन कर छात्र को पूर्ण मानव बनाने

के लिये भेजता था जहाँ छात्र को समयानुकूल, सैद्धान्तिक व व्यावहारिक गुणों की शिक्षा दीक्षा दी जाती थी। नैतिक व धार्मिक शिक्षा पर बल दिया जाता था। गुरु के सानिध्य में रहकर ही वह शिक्षा ग्रहण करता था, जिससे वह अनुशासन, संयम, नैतिक व सांस्कृतिक आचरण गुरु एवं शिष्य साथियों से सीखता व व्यवहार में लाता था। शिक्षा पूर्णत: नि:शुल्क थी, राजा व प्रजारूपी समाज ही उनके भरण -पोषण व गुरुकुल संचालन के आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करता था। समय के साथ-साथ यह व्यवस्था कैसे कालातीत हुई, शोध का एक विषय हो सकता है। पराधीनता के युग में शनै: शनै: मदरसा व्यवस्था भी चलन में आयी। इस काल तक शिक्षा एक व्यवसाय न होकर सेवा व परमार्थ का साधन बनीं रही। 'गुरु उस्ताद' सेवाभावी व्यक्ति बने रहें व समाज में सर्वोच्च सम्मान के पात्र बने रहे। यह पूर्व की संस्कृति का व्यापक प्रभाव था। अंग्रेजी शासन के प्रभावी होने के साथ ही पश्चिमी भौतिकतावादी संस्कृति पसरने लगी। मैकालयी शिक्षा प्रणाली ने धीरे-धीरे भारतीय शिक्षा व्यवस्था को बदलने अथवा समाप्त हो जाने के लिये विवश कर दिया। शिक्षा सेवा थी जो परमार्थ के स्थान पर व्यवसाय का रूप लेने लगी, परन्तु प्राचीन व्यवस्था के अभ्यस्त शिक्षक समुदाय शिक्षा, समाज व छात्र के प्रति समर्पित बना रहा एवं नैतिक व सांस्कृतिक गुणों से डिगा नहीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय शिक्षा व्यवस्था का पूर्णत: पश्चिमीकरण हो गया। प्रगतिशीलता के नाम पर व्यक्तिवाद व भौतिकवाद का चलन बढ़ा। शिक्षक वर्ग इससे अप्रभावित नहीं रह सका। इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण शिक्षक का स्वरूप बदला। सेवा व परमार्थ का स्थान व्यावसायिकता व व्यक्तिगत हितों के पोषण ने ले लिया। इस संपूर्ण संदर्भ में ही आज शिक्षकों के चयन व शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था को देखा जाना चाहिये। मैकालयी शिक्षा से पूर्व शिक्षा में औपचारिकतायें न्यूनतम थीं जो आज जटिल औपचारिकताओं के संजाल में जकड़ चुकी हैं, यहीं से मानवीय संवेदनाओं का क्षरण हुआ है।

आज भारतीय शिक्षा व्यवस्था विश्व की विशालतम शिक्षा व्यवस्थाओं में से एक है। उदारवादी नीतियाँ वैश्विक एकीकरण व शिक्षा में निजी उद्यम की तेजी से बढ़ती भागीदारी का ही परिणाम है, कि देश में लाखों स्कूलों, हजारों महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों का संचालन हो रहा हैं। औपचारिक व मान्यता प्राप्त संस्थानों के साथ-साथ कोचिंग संस्थानों जैसे अनौपचारिक शिक्षण संस्थानों का जाल भारत भर में फैला है। प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा में प्रवेशार्थियों व अध्ययरत विद्यार्थियों की संख्या करोड़ों है, यह शुभ संकेत है। शिक्षा के इस विस्तार से शिक्षकों की संख्या भी तेजी से बढ़ी है और संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था में लगभग एक करोड़ शिक्षक प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुये हैं। सेवानिवृत्त होने वाले शिक्षकों व प्रतिवर्ष नये शिक्षण संस्थानों में सृजित शिक्षक पदों के लिये बड़ी संख्या में शिक्षकों का प्रतिवर्ष चयन करना होता है। इनमें बहुसंख्यक पद औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत सृजित होते हैं। वर्तमान में शिक्षा को पारदर्शी, निष्पक्ष, उत्तरदायी बनाने के प्रयास में विभिन्न नियमों, उपनियमों व नियामक व्यवस्थाओं में जकड़ दिया गया है। सीमित वित्तीय साधनों के चलते व बढ़ते व्यय भार ने शिक्षकों की भर्ती व्यवस्था को भारी हानि पहुँचाई है। नियमित प्रशिक्षित शिक्षकों के स्थान पर अंशकालिक व संविदा पर शिक्षण कार्य कराने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर पुष्ट हो रही है। इससे शिक्षण व्यवस्था गैर पेशेवर हाथों में जाने से शिक्षा को कितनी हानि हो रही है, यह भावी पीढ़ियाँ ही बता पायेगी।

इस स्थिति से उबरने के लिये आवश्यक है कि शिक्षा पर राष्ट्रीय आय का न्यूनतम 6 प्रतिशत तथा राज्य सरकारों के बजट का 30 प्रतिशत व्यय किया जाय। उपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था करना सरकार का दायित्व होना चाहिये। तब ही शिक्षकों के चयन की एक निष्पक्ष, पारदर्शी व उत्तरदायी व्यवस्था बन सकती है तथा शिक्षा में सेवारत शिक्षकों व नये शिक्षकों के निरन्तर प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। शिक्षकों की भर्ती में सर्वाधिक अपारदर्शिता साक्षात्कार पर बल देने से आती है। यह स्वागत योग्य है कि भारत सरकार ने अनेक संवर्गों के चयन में साक्षात्कार की व्यवस्था को समाप्त कर दिया है। गुजरात में शिक्षकों के चयन की पारदर्शी व्यवस्था अनेक वर्षों से सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। शिक्षक चयन व शिक्षक पदस्थापन घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं। सरकारी स्कूलों में राज्य स्तरीय चयन व्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों के अभाव व अनुपस्थिति को जन्म देती है। क्या यह श्रेयष्कर नहीं होगा कि प्राथमिक शिक्षकों का चयन जिलेवार व माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों का चयन संभाग स्तर पर किया जाय? इससे स्थानीय व क्षेत्रीय आकाँक्षाओं की पूर्ति हो सकेगी। उच्च शिक्षा में चयन निश्चित रूप से राष्ट्रीय स्तर पर ही किया जाना चाहिये। सेवारत शिक्षकों के एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने को प्रेरित की जाने वाली व्यवस्था को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस दिशा में प्रयास किये हैं, परन्तु वे प्रभावी नहीं हो पाये हैं। उच्च शिक्षा में शिक्षण के साथ-साथ शोध व अनुसंधान के महत्त्व को स्वीकारते हुये शिक्षक चयन में शोध की क्षमता से युक्त शिक्षकों के चयन को ही वरीयता देनी चाहिये। शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षकों के अनवरत प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये। जिनमें भारतीय संदर्भों की प्रधानता होनी चाहिये। उच्च शिक्षा में शिक्षक चयन की इनब्रीडिंग व्यवस्था बहुत ही सीमित व अपवाद स्वरूप होनी चाहिये। विश्वविद्यालय या विभाग के छात्र को राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में अपनी प्रतिभा सिद्ध करनी चाहिये और अन्त में सीखने की कोई आयु या सीमा नहीं होती पर आचरण करते हुये सभी स्तरों व पदों के शिक्षकों के लिये फाउन्डेशन ओरियेंटेशन व रिफ्रेशर कोर्स नियमित अन्तराल पर अनिवार्य होने चाहिये। ❑

शिक्षक और शिक्षातन्त्र

1985 में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित शिक्षा की चुनौतियाँ दस्तावेज में कहा गया है कि शिक्षकों का चयन योग्यता के आधार पर नहीं होता। इस कारण बड़ी संख्या में ऐसे लोग शिक्षक बन जाते हैं जिनमें शिक्षण की क्षमता व प्रवृति नहीं होती। शिक्षण प्रशिक्षण के लिए चुनते समय भावी शिक्षक में संकल्पनात्मक स्पष्टता, जिज्ञासा, पहल करने की क्षमता, वैज्ञानिक प्रवृति, शारीरिक दक्षता, भाषिक कौशल, प्रभावी वक्ता व लेखन के गुणों की जाँच नहीं की जाती है। शिक्षक के संप्रेषण कौशल के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता जो शिक्षक का कार्य करने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है।

❑ **विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी**

शिक्षा के बिना कोई भी देश प्रगति नहीं कर सकता। शिक्षा के सही संचालन के लिए शिक्षकों का सही चयन व प्रशिक्षण आवश्यक है। हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी परेशानी यह है कि हम न तो शिक्षक चयन की सही विधि विकसित कर पाए हैं और न ही सही प्रशिक्षण दे पा रहे हैं। देश आजाद होने के बाद स्थिति में सुधार होने के बजाय स्थिति बिगड़ ही रही है। शिक्षकों के वेतनमान बढ़ाने से अच्छी शैक्षिक उपलब्धि वाले लोग शिक्षा क्षेत्र में आने लगे हैं मगर सही चयन व प्रभावी प्रशासन के अभाव में इसका लाभ नहीं मिल पाया है। प्रभावी शिक्षा तंत्र के अभाव के कारण शिक्षा की सार्वजनिक व्यवस्था नकारा सिद्ध हो चुकी है।

कहते हैं कि सोये को जगाया जा सकता है मगर जागे हुए को कौन जगा सकता है? हमारी स्थिति कुछ ऐसी ही है। अच्छे शिक्षक कैसे होते हैं तथा उन्हें कैसे प्रशिक्षित किया जाये इस पर देश में चिन्तन तो बहुत हुआ है मगर अमल नहीं किया गया। विभिन्न आयोगों व समितियों की रिपोर्टें इसकी गवाह है। हमने आयोगों की रिपोर्टों को ठीक तरह पढ़े बिना ही मानव संसाधन विकास मंत्रालय के पुस्तकालय की अलमारियों में कैद कर पटक दिया है।

स्कूल स्तर पर हो नियुक्ति

कोठारी आयोग ने शिक्षक को यथासंभव एक ही विद्यालय में रखने को कहा था। शिक्षकों के स्थानान्तरण अन्य कर्मचारियों की तरह नहीं कर उन्हें यथासम्भव एक ही विद्यालय में रखने को कहा था। सम्भव हो तो पदोन्नति भी उसी विद्यालय में देनी की बात कही थी। ऐसा होने पर ही शिक्षक के स्थानीय जनता से निकट सम्बन्ध बन पाते हैं। विद्यालय से उसका लगाव होता है। विद्यालय की प्रतिष्ठा के साथ शिक्षक की प्रतिष्ठा भी जुड़ जाती है। शिक्षक उस विद्यालय के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझने लगता है। समाज से सम्बन्धों का उपयोग कर वह शिक्षा की अच्छी व्यवस्था कर सकता है। 1986 की शिक्षा नीति में इस बात पर जोर दिया गया है कि प्रत्येक विद्यालय को अलग व्यक्तित्व विकसित करने का अवसर दिया जाना चाहिए। शिक्षा प्रशासन, उपरोक्त नीतियों को लागू करने में पूर्णत: विफल रहा है।

शिक्षक प्रशिक्षण में कक्षा को एक इकाई मान कर उसे पढ़ाने का अभ्यास कराया जाता है

मगर शिक्षा मनोविज्ञान कहता है कि हर बच्चा स्वतन्त्र इकाई होता है। प्रत्येक विद्यार्थी को उसके मनोविज्ञान के अनुरूप ही परामर्श दिया जाना चाहिए। इस विरोधाभास के कारण शिक्षण प्रशिक्षण, शिक्षक की नौकरी पाने में तो मदद करता है, मगर प्रभावी शिक्षण में मदद नहीं करता है। प्रभावी शिक्षण के अभाव में उपाधि प्राप्त अधिकांश लोग सरकारी नौकरी के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकते। इसके चलते ही सतत् व व्यापक मूल्यांकन असफल हो गया। बोर्ड परीक्षाओं का भय दिखा कर बच्चों को रटने के लिए मजबूर किया जा रहा है। योग्यता सूचियों का प्रकाशन कर शिक्षा को प्रतियोगिता में बदल दिया गया है।

1985 में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित शिक्षा की चुनौतियाँ दस्तावेज में कहा गया है कि शिक्षकों का चयन योग्यता के आधार पर नहीं होता। इस कारण बड़ी संख्या में ऐसे लोग शिक्षक बन जाते हैं जिनमें शिक्षण की क्षमता व प्रवृति नहीं होती। शिक्षण प्रशिक्षण के लिए चुनते समय भावी शिक्षक में संकल्पनात्मक स्पष्टता, जिज्ञासा, पहल करने की क्षमता, वैज्ञानिक प्रवृति, शारीरिक दक्षता, भाषिक कौशल, प्रभावी वक्ता व लेखन के गुणों की जाँच नहीं की जाती है। शिक्षक के संप्रेषण कौशल के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता जो शिक्षक का कार्य करने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण है। 1986 की शिक्षानीति में शिक्षक को विद्यार्थी के चरित्र निर्माण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक मान कर उसके चयन की प्रणाली को पुन:संगठित करने का संकल्प प्रकट किया गया था। शिक्षानीति की कार्य योजना में शिक्षक प्रशिक्षण में गिरावट आने की बात को स्वीकार करते हुए उसमें सुधार करने की बात कही गई थी। शिक्षक प्रशिक्षण की अवधि को बढ़ा देना अपने आप में कोई सुधार नहीं है। उसे समय व क्षेत्र की आवश्यकता के अनुरूप बनाना आवश्यक है। फिलहाल तो शिक्षक प्रशिक्षण के नाम पर प्रमाण पत्र व उपाधियाँ बेची जा रही है।

समर्पण आवश्यक

अभी शिक्षक चयन पूर्णत: लिखित परीक्षा पर आधारित है। लिखित परीक्षा से जानकारी की जाँच हो सकती है। शिक्षण क्षमता व शिक्षक प्रवृति की जाँच नहीं हो सकती। भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के नाम पर हमने शिक्षक चयन को वस्तुनिष्ठ बनाने के चक्कर में शिक्षण-क्षमता की जाँच करना छोड़ दिया है। स्वयं ज्ञानी होना व ज्ञान को अन्य लोगों तक पहुँचाना दो अलग अलग बातें हैं। डण्डे या लालच के बल पर सूचनाएँ रटाई तो जा सकती है मगर ज्ञान पैदा नहीं किया जा सकता। सरकारी नौकरी के लालच में उच्च शैक्षिक उपलब्धी वाले युवा शिक्षा क्षेत्र में आ रहे हैं मगर इससे शिक्षा का कोई लाभ नहीं हो रहा है। अनेक युवा शिक्षक शिक्षक की नौकरी को उच्च नौकरी की तैयारी के प्लेटफॉर्म के रूप में प्रयोग करते हैं। नौकरी पाने के तुरन्त बाद ये प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में लग जाते हैं। इसका विपरीत प्रभाव शिक्षण कार्य पर पड़ना स्वाभाविक है।

शिक्षक चयन में शैक्षिक उपलब्धि को आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं देकर समर्पण भाव को अधिक महत्त्व दिया जाना जाहिए। हमारे यहाँ शिक्षा के नाम पर रटने का बाजार गर्म है। यही कारण है कि 1.20 अरब की जनसंख्या के बावजूद भी ज्ञान के उत्पादन में हमारी भूमिका उपेक्षणीय है। हमें रटाने वाले शिक्षक नहीं, सीखने को प्रेरित करने वाले प्रेरक चाहिए। शिक्षक का चयन करते समय हमें स्वामी विवेकानंद की यह बात याद रखनी चाहिए कि कोई किसी को कुछ नहीं पढ़ा सकता है, जो पढ़ाने का प्रयास करता है वह मूर्ख है।

बेचारा शिक्षक

शिक्षक शिक्षातन्त्र की प्रमुख इकाई है। एक शिक्षक की नियुक्ति होते ही स्कूल प्रारम्भ हो जाती है। चाहे भवन व विद्यार्थी नहीं हो तो भी स्कूल शुरू मान लिया जाता है। शिक्षा तन्त्र की प्रमुख इकाई होते हुए भी मान-सम्मान की दृष्टि से शिक्षातन्त्र में शिक्षक का स्थान सबसे नीचे है। प्रशासन का अदना अधिकारी भी उसके कार्य का निरीक्षण कर सकता है। शिक्षक को निर्देश, आदेश आदि दे सकता है। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग ने समाज में शिक्षक की स्थिति सुधारने के चाहे कितने ही उपाय सुझाये हो, प्रशासन ने शिक्षक को सरकार के एक अदने कर्मचारी की भूमिका से ऊपर नहीं उठने दिया है। राष्ट्रीय सोच के विकास के बिना शिक्षक राष्ट्र निर्माता कैसे बन सकता है?

अन्त:सेवा प्रशिक्षण भी सही नहीं है। अन्त:सेवा प्रशिक्षण आवश्यकता आधारित नहीं होकर अभियान के रूप में चलाया जाता है। ऐसे में न तो प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त स्थान उपलब्ध होता है और न ही अच्छे प्रशिक्षक। ऐसे में अन्त: सेवा प्रशिक्षण के नाम पर केवल बजट ही खर्च किया जाता है। खर्च किए जाने वाले धन की तुलना में उपलब्धि अत्यन्त क्षीण होती है।

शिक्षा के भारतीयकरण करने पर भी प्राचीन गुरुकुल प्रणाली की ओर लौटना मुश्किल है। ऐसे में शिक्षा की सार्वजनिक व्यवस्था को चुस्त दुरुस्त करने लिए आवश्यक है शिक्षकों के चयन व प्रशिक्षण प्रणाली में व्यापक एवं सार्थक प्रयास किए जाये। इसके लिए जिम्मेदार शिक्षा प्रशासन का होना आवश्यक है। चुनाव आयोग की तरह शिक्षा का स्वतन्त्र निकाय बना कर ही इस उद्देश्य को पाया जा सकता है। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

अध्यापक शिक्षा में चुनौतियाँ

जब तक शिक्षा के अधिकार पर धन-बल का अधिकार रहेगा शिक्षा में भेदभाव बढ़ेगा। यह स्पष्ट है कि निजीकरण के माध्यम से कभी भी शिक्षा के असली लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता है। कोचिंग के बाजार में कई घटिया, गैर मान्यता प्राप्त, फर्जी शिक्षा की दुकानें खुलती जा रही हैं। ऐसे में इन्हें रोकना बड़ी चुनौती है। देश में इस समय 125 डीम्ड विश्वविद्यालय हैं। इनमें 102 निजी स्वामित्व वाले संस्थान हैं। इन्होंने उच्च शिक्षा को मुनाफे का धंधा बना दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में जो तस्वीर सामने आयी है उसके कारण आर्थिक व सामाजिक आधार पर भी शिक्षा विभाजित हुई है।

❑ **बजरंगी सिंह**

शिक्षकों के लिए सतत् व्यावसायिक विकास आवश्यक है, केवल शिक्षक बन जाना ही पर्याप्त नहीं है। शिक्षा के बदलते स्वरूप के प्रति भी उसे जागरूक और सतत् प्रयत्नशील बनें रहना चाहिए, तभी वह एक अच्छे शिक्षक के मायने को सही रूप में निभा पायेगा। वर्तमान शिक्षा-शिक्षा कार्यक्रम को मिलाना और शिक्षक-शिक्षा ढाँचागत प्रावधान तथा सतत् व्यावसायिक विकास के लिए मुक्त और दूरस्थ शिक्षा के उपयोग के पुनरोद्धार के उन्नयन की आवश्यकता है। यह तभी संभव है जब शिक्षक को सही और उपयोगी प्रशिक्षण हासिल हो। दुर्भाग्य है कि इस दिशा में हमने सकारात्मक कदम उठाये भी हैं, वे पर्याप्त नहीं है और न ही युगानुकूल हैं।

विकेन्द्रीकरण, मौजूदा राष्ट्रीय संरचनाओं तथा संस्थाओं की ढाँचागत व्यवस्था के लिए क्षमता और उचित शिक्षण तथा उसके सीखने के तरीकों को विकसित करना होगा उसके साथ ही विकास को पुनर्जीवित करना होगा ताकि सामुदायिक भागीदारी जुटाने के लिए हम रणनीति विकसित कर सकें।

निगरानी और मूल्यांकन के लिए व्यापक और सतत् एक योजना विकसित करनी है। निगरानी और मूल्यांकन क्षेत्र में नवाचारों, रणनीतियों को दूरदराज तक पहुँचाने के लिए भारत में शिक्षकों की एक बड़ी संख्या है और बहुत अधिक जरूरत है। शिक्षक भर्ती को प्रशिक्षण, प्रेरणा, प्रतिधारणा और प्रतिक्रिया से सभी को जोड़ना होगा। इसके लिए एक बड़े पैमाने पर योजना बनानी होगी। इसके अलावा सेवाकालीन शिक्षक विकास का अंतिम लक्ष्य सुनिश्चित कराने के लिए श्रेष्ठतम सीखने की जगह होनी चाहिए। स्कूली शिक्षा को सभी स्तर के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए वर्तमान में उपलब्ध संस्थागत क्षमता को बढ़ाने के लिए सीटीई सहित राज्य संस्थाओं के सभी आवश्यक प्रकार, निजी क्षेत्रों में शिक्षा और शिक्षक के प्रशिक्षण संस्थाओं, के विश्वविद्यालयों के विभागों में सेवा सभी स्तरों पर मौजूदा कैडर के प्रशिक्षण के लिए भी शामिल हैं।

अध्यापक शिक्षण के लिए एक व्यापक मॉडल की कल्पना करने के लिए चट्टोपाध्याय आयोग की सिफारिश को और उसके परिप्रेक्ष्य को अद्यतन करने तथा एक नया व्यापक मॉडल की प्रगति सुनिश्चित करनी होगी। उसके अलावा परिलब्धियों सहित शिक्षक भर्ती, तैनाती और सेवा शर्तों की नीतियों में आवश्यक संशोधन द्वारा

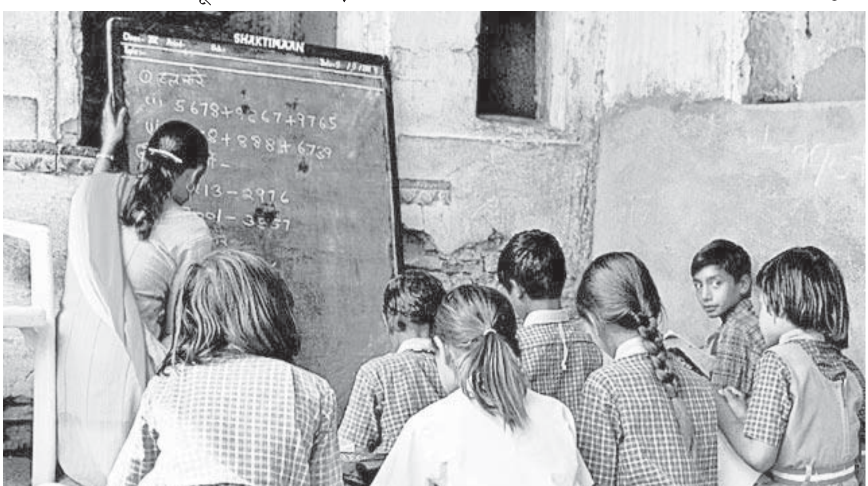

प्रशिक्षण संस्थानों और सामान्य शिक्षा के कॉलेजों या विश्वविद्यालयों के मध्य सहयोग और सहयोग की सुविधा के लिए एक स्थानीय कॉलेज व विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के मध्य संवाद कायम करने में सक्षम बनाना होगा।

भारत सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं में कहा गया था कि शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए काफी निवेश की जरूरत होगी। बिना उसके यह संभव नहीं है। शिक्षक-प्रशिक्षकों और शिक्षकों को हमें इस तरह तैयार करना होगा कि वे हर बच्चे को उच्चतम गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान कर सकें। गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षा प्रशिक्षण को एक मिशन के रूप में रखा जाना चाहिए। केन्द्र सरकार ने हर जिले में दो केन्द्रीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों को खोलने का निर्णय कर इसकी शुरूआत भी कर दी है जो एक शुभ संकेत है। जब तक शिक्षा के अधिकार पर धन-बल का अधिकार रहेगा शिक्षा में भेदभाव बढ़ेगा। यह स्पष्ट है कि निजीकरण के माध्यम से कभी भी शिक्षा के असली लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता है। कोचिंग के बाजार में कई घटिया, गैर मान्यता प्राप्त, फर्जी शिक्षा की दुकानें खुलती जा रही हैं। ऐसे में इन्हें रोकना बड़ी चुनौती है। देश में इस समय 125 डीम्ड विश्वविद्यालय हैं। इनमें 102 निजी स्वामित्व वाले संस्थान हैं। इन्होंने उच्च शिक्षा को मुनाफे का धंधा बना दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में जो तस्वीर सामने आयी है उसके कारण आर्थिक व सामाजिक आधार पर भी शिक्षा विभाजित हुई है।

शिक्षा में मुनाफा कमाने पर रोक धनवान और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े सभी छात्रों के लिए अच्छी शिक्षा दिलाने का संकल्प, शिक्षा इन सबको स्वीकार करें। राजनीति की चेरी बने रहने से इसे छुटकारा दिलाना ही होगा। देशभक्ति, स्वास्थ्य, संरक्षण, सामाजिक संवेदनशीलता तथा अध्यात्मिकता यह शिक्षा के भव्य भवन के चार स्तम्भ हैं। इनको राष्ट्रीय शिक्षा नीति में घोषित कर, स्वायत्त शिक्षा को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करना चाहिए। इन उपायों से ही शिक्षा की चुनौतियों का मुकाबला किया जा सकता है। शिक्षा बाजार नहीं अपितु मानव मन को तैयार करने का उदात्त साँचा है जितनी जल्दी हम इन तथ्यों को समझेंगे, उतना ही शिक्षा का भला होगा।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) ने जिस बेरहमी तथा बेशर्मी से बीएड महाविद्यालयों को खोलने की स्वीकृति प्रदान की है वह एक दुखद गाथा है। प्राय: महाविद्यालयों में मापदण्डों का पालन सही ढँग से नहीं हुआ है। उल्टे उसकी अवहेलना हुई है। उत्तर प्रदेश जैसे बड़े राज्यों में इतने अधिक निजी प्रशिक्षण महाविद्यालय पैसे के बल आज खुल गये हैं, हालत यह है कि सीटें पूरी नहीं भरी जा सकतीं। यह गाथा यहीं नहीं खत्म होती। प्रवेश से लेकर परीक्षा उत्तीर्ण करने में अच्छे अंकों के पाने में लेन-देन का बड़ा खेल जारी है। ऐसे में छात्रों का शोषण हो रहा है फिर भी अध्यापक बनना आसान नहीं है। हजारों प्रशिक्षित अभ्यर्थी बेकार है।

राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा जारी अभिलेख गुणवत्तापूर्ण अध्यापक शिक्षा के लिए पाठयक्रम परिप्रेक्ष्य (1998) में यह स्वीकार किया गया है कि स्वदेशी संकल्पना के परिपालन हेतु अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली विकसित की जानी चाहिए जो भारत की सांस्कृतिक विरासत पर आधारित हो तथा सामाजिक परिवर्तनों व निरन्तरता के अनुरूप ही संवैधानिक उद्देश्यों को प्राप्त करायें। नयी सामाजिक व्यवस्था के अभ्युदय में सहायक हो और व्यावसायिक रूप से दक्ष, समर्पित शिक्षक तैयार करें। आज यह सबसे बड़ी चुनौती है कि स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा ऐसे शिक्षक तैयार नहीं हो पा रहे हैं जो शिक्षा की वर्तमान चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए अपने को प्रस्तुत कर सकें। इसलिए यह माना जाता है कि शिक्षा समावेशी हो और शिक्षक का अपने छात्रों के प्रति उत्तरदायित्व भी हो। सौभाग्य है कि आज युवाओं का एक बहुत बड़ा वर्ग शिक्षक बनने के लिए आतुर है और उसकी तैयारी कर रहा है। आज शिक्षा क्षेत्र में सब कुछ इतनी तेजी से बदल रहा है कि यदि हम उसका सही आकलन और संयोजन नहीं कर सके तो अच्छे शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से नहीं निकल पायेंगे। शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता का काम एक शिक्षक का है। अधिकांश देशों में शिक्षकों का वेतन का भुगतान करों के माध्यम से या स्कूल की फीस के माध्यम से हासिल कर रहे हैं, अधिकांश देशों में शिक्षक वेतन या अपने काम के अनुभव की गुणवत्ता से संबंधित नहीं है। सबसे अच्छा प्रदर्शन शिक्षक की पहचान है और उसके अनुसार उसके पारिश्रमिक में वृद्धि करने की प्रणाली है। हालांकि अध्यापक शिक्षा पर राजनीतिक नियंत्रण की डिग्री भिन्न होती है फिर भी यह राजनीति से मुक्त नहीं है।

राज्यों में शिक्षाकर्मी योजना अलोकप्रिय एवं अव्यवस्थित रही है। आये दिन शिक्षक हड़ताल पर रहते हैं। इन्हें न तो कर्णप्रिय नाम दिया गया है और न ही पर्याप्त वेतन। इसलिए बदले में ये संतोषप्रद काम नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए उनकी दक्षता बढ़ाने हेतु कार्यक्रम बनाना गुणवत्ता की दृष्टि से हितकर होगा। साथ ही प्रशिक्षित शिक्षाकर्मियों को ही शिक्षक बनाना वांछनीय है। दो वर्षीय प्रशिक्षण श्रेयस्कर है और न्यायसंगत भी।❑

(स्वतंत्र स्तम्भ लेखक)

देश में गिरते शैक्षिक स्तर का एक प्रमुख कारण शिक्षकों के प्रशिक्षण की कमी भी है। शिक्षक सीखे हुए ज्ञान, कौशल का कितना उपयोग कर रहे हैं, इसके सतत् परीक्षण की आवश्यकता है। शिक्षक प्रशिक्षण के तत्त्वों, सेवापूर्व, सेवाकालीन, आजीवन और सतत् शिक्षा, विस्तार सेवा कार्यक्रम और व्यवसायिक शिक्षा विकास के लिए प्रशिक्षण दिये जाने का उद्देश्य वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्था में ठीक प्रकार से नहीं हो रहा है। प्रशिक्षणों में सरकार द्वारा घोषित नीतियों योजनाओं, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या, विद्यालय, विषय क्षेत्र की ज्ञान सामग्री और मूल्यांकन के सुदृढ़ तत्त्वों का दक्षताओं के साथ प्रशिक्षण पद्धतियों में उचित समावेश नहीं हो रहा है। अस्तु, देश में चल रहे प्रशिक्षणालयों का उचित मार्गदर्शन देकर, अपेक्षित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्न की आवश्यकता है।

गुणात्मक शिक्षा के लिए सुप्रशिक्षित शिक्षक

❑ **बजरंग प्रसाद मजेजी**

शैक्षिक परिदृश्य परिवर्तन में सदैव शिक्षक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। शैक्षिक गुणवत्ता में शिक्षक प्रभावशाली कार्यकर्ता होता है। इसलिए शिक्षक के लिए उपयुक्त और पर्याप्त प्रशिक्षण आवश्यक है। संसार के श्रेष्ठतम शिक्षा संस्थान ने माना है कि शिक्षा में शिक्षक ही सबकुछ है। ऐसे संस्थानों ने राष्ट्रीय आकलन और शिक्षकों के सघन कार्यक्रम स्थापित किए हैं। हमारे यहाँ यह धारणा है कि अच्छे शिक्षक पैदा होते हैं, जबकि सच यह है कि अच्छे शिक्षक तैयार किए जाते हैं। पर्याप्त तथा प्रभावी प्रशिक्षण से ही अच्छा शिक्षक बन सकता है। शिक्षक का प्रशिक्षण सेवापूर्व और सेवारत दोनों ही स्तर पर आवश्यक है। सेवापूर्व मात्र एक प्रशिक्षण प्रभावी प्रशिक्षण नहीं माना जाना चाहिए, अपितु अभिमुखी प्रशिक्षण निरन्तर समय-समय पर सेवारत शिक्षकों को दिया जाना चाहिए। शिक्षण एक दक्षतापूर्ण कार्य है। इसके लिए कौशल विकास का होना भी आवश्यक है, जैसे किसी भी व्यवसाय में दक्षता के लिए कर्मशील, अनुभव तथा प्रशिक्षण आवश्यक है। जिस प्रकार वकील, चिकित्सक, इंजीनियर, कारीगर अपने व्यवसाय का ज्ञान अर्जित किए बिना कार्यक्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार शिक्षक के लिए भी अपेक्षा की जाती है कि वह व्यवसायिक कुशलता के प्रति जागरूक हो।

वर्तमान तकनीकी युग में पाठ्यक्रम के प्रति विद्यार्थी जैसी शिक्षक से अपेक्षा रखते हैं, वह पूर्ति नहीं कर पाये तो, विद्यार्थी पर एकांगी प्रभाव पड़ता है। बालक सैद्धान्तिक जानकारी तो अर्जित कर लेता है लेकिन जीवन मूल्य अर्जित नहीं कर पाता है। इसका प्रभाव देखने को मिल रहा है कि इच्छित व्यवसाय या नौकरी नहीं मिलने पर मजबूरी में बने शिक्षक शिक्षा विभाग का भला नहीं कर रहे हैं, परिणामस्वरूप शिक्षा तो दी जा रही है, परीक्षा परिणाम प्रतिवर्ष बढ़ रहे हैं, शिक्षार्थी भी क्रमोन्नत हो रहे हैं, परन्तु गुणात्मक शिक्षा की अभाव होता जा रहा है। डिग्री लेकर भी दक्षता के अभाव में लाखों नवयुवक बेरोजगार हो रहे हैं। इसका एक कारण शिक्षक की अपने व्यवसाय के प्रति उदासीनता मानी जा सकती है। एक शिक्षक के शिक्षकत्त्व के रूप में देखें तो उसे अपने

विद्यार्थियों के बारे में गहन जानकारी होना चाहिए उसे ज्ञात रहना चाहिए कि उसकी कक्षा में कौन सा विद्यार्थी किस क्षेत्र में कितनी योग्यता रखता है तथा इसके साथ-साथ पाठ्यक्रम में आई विषयवस्तु का पूर्ण ज्ञान एवं संदर्भ जानकारी से परिपूर्ण होना चाहिए। वर्तमान में ऐसे कई शिक्षक हैं जो पारंपरिक शिक्षण पद्धति से शिक्षण कार्य कर रहे हैं। ऐसे में वर्तमान शिक्षा प्रणाली, पाठ्यक्रम शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य समन्वय का अभाव होना स्वाभाविक है। विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार शिक्षकों द्वारा उपयोग में ली जा रही शिक्षण पद्धति में परिवर्तन होना आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि ''सारी शिक्षा तथा प्रशिक्षण का उद्देश्य एकमेव मनुष्य का निर्माण होना चाहिए'' यह शिक्षक ही कर सकता है। शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेतु आवश्यक है कि विद्यालयों में सुप्रशिक्षित शिक्षक नियुक्त किए जायें। तथा अध्यापक के सतत् उचित प्रशिक्षण की ओर ध्यान दिया जायें।

वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण की स्थिति

सेवारत शिक्षकों के वर्तमान डाइट, सर्वशिक्षा अभियान संदर्भ केन्द्रों द्वारा दिये जा रहे प्रशिक्षण के विषय एवं पद्धति वर्षों से चले आ रहे ढर्रे पर ही दिये जा रहे हैं। प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षण देने वाले दक्ष शिक्षक भी परंपरागत तरीके से अभिनव प्रशिक्षण दे रहे हैं। अनुभवी दक्ष प्रशिक्षकों की कमी एवं युवा नव नियुक्त आर.पी., एस.टी. अपेक्षित लाभ नहीं दे पा रहे हैं। सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत अभिनव प्रशिक्षण, कम्प्यूटर प्रशिक्षण ब्रिज-कोर्स प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए तथा विद्यालयी बुनियादी आवश्यकताओं शिक्षा व्यवस्था ठीक चलाने के लिए दक्ष, प्रशिक्षित कर्मयोगी शिक्षक होने चाहिए, जिनकी वर्तमान में कमी है। शिक्षक व्यवसायोन्मुखी, वेतनभोगी कर्मचारी बनकर रह गया है। स्वतंत्रता के पश्चात सरकारों ने प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक के हजारों विद्यालय राज्यवार खोल दिये हैं। परन्तु देश में सम्पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य भी प्राप्त नहीं किया जा सका है। फर्जी डिग्री कोर्स उजागर करते हैं कि कैसे बिना पढ़े बिना प्रशिक्षणालय में उपस्थित हुए शिक्षक बन रहे हैं, जो बालकों का अहित कर रहे हैं। हाल ही में दूरदर्शन पर बिहार में उपखण्ड अधिकारी द्वारा विद्यालय निरीक्षण में श्यामपट्ट पर अध्यापिका द्वारा 'नमस्कार' आशीर्वाद जैसे शब्द ठीक नहीं लिख पाने तथा बालकों की उत्तरपुस्तिका में अशुद्ध वर्तनीयुक्त शब्दों से शिक्षण, बालक तथा देश की शिक्षा का कितना भला हो रहा है, दिखाया गया। जो वर्तमान शिक्षकों की शिक्षण व्यवस्था उनके प्रशिक्षण की पोल खोल रहे हैं। देश में गिरते शैक्षिक स्तर का एक प्रमुख कारण शिक्षकों के प्रशिक्षण की कमी भी है। शिक्षक सीखे हुए ज्ञान, कौशल का कितना उपयोग कर रहे हैं, इसके सतत् परीक्षण की आवश्यकता है। शिक्षक प्रशिक्षण के तत्त्वों, सेवापूर्व, सेवाकालीन, आजीवन और सतत् शिक्षा, विस्तार सेवा कार्यक्रम और व्यवसायिक शिक्षा विकास के लिए प्रशिक्षण दिये जाने का उद्देश्य वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्था में ठीक प्रकार से नहीं हो रहा है। प्रशिक्षणों में सरकार द्वारा घोषित नीतियों, योजनाओं, पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या, विद्यालय, विषय क्षेत्र की ज्ञान सामग्री और मूल्यांकन के सुदृढ़ तत्त्वों का दक्षताओं के साथ प्रशिक्षण पद्धतियों में उचित समावेश नहीं हो रहा है। अस्तु, देश में चल रहे प्रशिक्षणालयों को उचित मार्गदर्शन देकर, अपेक्षित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्न की आवश्यकता है।

प्रभावी प्रशिक्षण हेतु सुझाव

- पाठ्यक्रमों में किए जाने वाले परिवर्तनों की शिक्षकों को अद्यतन जानकारी दी जाकर, शिक्षण पद्धति में समाहित करने हेतु प्रेरित करना चाहिए।
- प्रशिक्षण कार्यक्रम में बहुधा व्यवहारिक पक्ष की उपेक्षा रहती है। वास्तविक कक्षा शिक्षण अभ्यास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
- पाठ्यचर्या विकास के विभिन्न तत्त्वों से जुडी समझ और दक्षताएं विशेषरूप से इन प्रशिक्षणालयों में सैद्धान्तिक शिक्षण और व्यवहारिक प्रशिक्षण दोनों दृष्टि से सम्मिलित कर प्रशिक्षण देना चाहिए।
- पारंपरिक शिक्षक प्रशिक्षण से मूल्य परक वातावरण की ओर अग्रसर करने का अवसर देकर खोज, समस्या का समाधान, निर्णयात्मक कौशल को प्रोत्साहित करने के गुण विकसित करना चाहिए।
- शिक्षक प्रेरक के रूप में नई भूमिका अपनाकर नवाचार, नवीन पाठ्यक्रम, सूचना एवं प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटर से श्रेष्ठ शिक्षण कर सकें, ऐसा सभी शिक्षकों को प्रभावी प्रशिक्षण दिया जाये।
- शिक्षक को चतुर श्रोता की तरह विद्यार्थियों की समस्याओं को समझ कर उनका निराकरण करने योग्य बनाया जाना चाहिए।
- वर्तमान युग में ज्ञान आधारित समाज एवं अर्थ व्यवस्था में सहभागिता के लिए अति आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी जीवन पर्यन्त अधिगम, कौशल से सुपरिचित हो इस हेतु शिक्षक को पूर्ण प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है।
- बाल केन्द्रित शिक्षा के सन्दर्भ में ज्ञान एवं कौशल को अभिवृद्धित करने हेतु शिक्षक को प्रभावी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- शिक्षक अच्छा संप्रेषक और संदेशवाहक बने इस हेतु उन्हें अधिगम प्रेरकों के रूप में कार्य करने योग्य बनाया जाना चाहिए। ❑

(स्वतंत्र लेखक)

भारतीय परम्परागत व सांस्कृतिक विरासत को बनाये रखना तथा वैश्विक स्तर पर व्यवसायिक कौशल एवं उद्यमिता को बढ़ावा देना शिक्षकों के समक्ष एक चुनौती है। अत: शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करने के उद्देश्यों में परिवर्तन करना होगा। शिक्षण में सृजनात्मकता बढाने व अभिव्यक्ति कौशल बढाने के मापदण्ड निर्धारित करने होंगे। शैक्षणिक सुधारों द्वारा सामाजिक चेतना जाग्रत करने में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। शिक्षा क्षेत्र में उपलब्ध अपार मानव संसाधन का गुणात्मक उपयोग तभी संभव होगा जब उपेक्षित क्षेत्रों और दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षण पहुँचे और सभी उम्र के लोगों को, कामकाजी युवाओं एवं महिलाओं को शिक्षा उपलब्ध हो सके। इस प्रकार के सामाजिक शिक्षा के प्रसार सम्बन्धी शिक्षक प्रशिक्षण के प्रावधान, रोजगार परियोजनाओं में निर्धारित किये जायें।

सामाजिक उत्थान के लिए हो शिक्षक-प्रशिक्षण

❑ डॉ. रेखा भट्ट

शिक्षक अपने ज्ञान द्वारा विद्यार्थी को उन्नति व समृद्धि के मार्ग की ओर प्रशस्त करता है। विद्यार्थी में मूल्यों को स्थापित कर एक आदर्श नागरिक बनाता है। इस प्रकार शिक्षक ही एक श्रेष्ठ समाज का निर्माण करता है। प्राचीन काल में भारत में ऋषि, मुनि व तपस्वी के रूप में शिक्षक श्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न थे। अपने ज्ञान व आचरण से वे ही समाज को सर्वविध समृद्ध बनाते थे। वैदिक काल में भारतीय समाज शिक्षा की दृष्टि से अन्यन्त उन्नत था। इस तथ्य का वर्णन हमें छान्दोग्यपनिषद में मिलता है, जिसमें अश्वघोष गर्व से कहते हैं– ''मेरे जनपद में कोई अविद्वान नही है।'' वाल्मीकि रामायण के अनुसार– ''अयोध्या नगरी का समाज असाधारण था, एवं नगर के सभी नागरिक बहुश्रुत विद्वान थे। ऐसे विद्वत समाज का निर्माण अत्यन्त ज्ञानवान, निष्ठावान एवं कर्मठ शिक्षक ही करते थे।

लगभग एक हजार वर्षों के राजनैतिक व सामाजिक संघर्ष और 200 वर्षों की ब्रिटिश पराधीनता के कारण भारत की विश्वविख्यात सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षण पद्धति समाप्त हो गई। शिक्षा प्राप्ति का उद्देश्य एवं लक्ष्य केवल रोजगार एवं भौतिक साधनों की प्राप्ति हो जाने के कारण भारतीय शिक्षा का मौलिक व प्राचीन ढाँचा पूरी तरह बदल गया है। इससे शिक्षकों द्वारा समाज हित में शिक्षण के व्यापक उद्देश्य समाप्त हो गये। पाश्चात्य शिक्षण पद्धति के प्रभाव में भारतीय दर्शन– वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव भी शिक्षा एवं समाज से विलुप्त होता गया।

प्रचलित आधुनिक शिक्षा पद्धति के अनुसार, निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्य पुस्तकें एवं उनमें दी गई विषय वस्तु को पढ़ाना एवं परीक्षा द्वारा उनका मूल्यांकन करवाना शिक्षक का दायित्व होता है। निर्धारित पाठ्यक्रम के अध्ययन मात्र से विद्यार्थी में चिंतन–मनन, वैचारिक शक्ति एवं सीखने की क्षमता का विकास संभव नही हो पाता है। कक्षा–कक्षीय शिक्षण से आधारभूत तथ्यों के सैद्धान्तिक ज्ञान, जानकारी प्रदान करना और जानकारियों के स्मरण व पुनर्लेखन पर आधारित परीक्षण करवाने तक सीमित रहता है। व्यवहारिक ज्ञान जीवन पर्यन्त विद्यार्थी के लिये लाभदायक होता है अत: विद्यार्थी में कौशल एवं क्षमताओं का विकास करने एवं सामाजिक मूल्यों को स्थापित करने जैसे व्यापक उद्देश्य शिक्षा में समाहित करते हुए शिक्षक को प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है।

आधुनिक समय मे होने वाले सामाजिक व सांस्कृतिक विकृतिकरण को तथा मूल्यों के क्षरण को शिक्षक ही रोक सकते हैं। उचित प्रशिक्षण द्वारा शिक्षक की प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित किया जा सकता है। शिक्षक के ज्ञान, कौशल और सामर्थ्य को तात्कालिन समय के अनुकूल प्रशिक्षण द्वारा पुन: सशक्त किया जा सकता है।

शिक्षक को सामाजिक समस्याओं के प्रति विद्यार्थी को जागरूक बनाने एवं समाज व राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान सुनिश्चित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाए। प्रशिक्षित शिक्षक ही अपनी राष्ट्र-भाषा व राष्ट्रीय संस्कृति को समाज में गौरवपूर्ण स्थान प्रदान कराने में सहायक हो सकते हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण में बाल मनोविज्ञान, सामाजिक ज्ञान, भारतीय इतिहास, बाल सुरक्षा कानून, मातृभाषा जैसे विषयों को प्रयोगात्मक बनाने से शिक्षक की समझ व रुचि बढ़ेगी तभी वे विद्यार्थी के लिये तनावमुक्त वातावरण निर्मित करते हुए शिक्षण को उपयोगी बना सकेंगे। संस्कृति प्रयोगों के निष्कर्षों पर आधारित नवाचार से पूर्ण शिक्षण व मूल्यांकन पद्धति का निर्धारण किये जाने से शिक्षकों द्वारा प्रभावी शिक्षण हो सकेगा। कक्षा कक्ष में प्रश्नों के माध्यम से, चर्चाओं व संदर्भों के माध्यम से शिक्षण को अधिक क्रियात्मक बनाया जा सकता है। पारदर्शिता एवं ईमानदारी शिक्षण को प्रखर बनाती है। पुस्तकीय आदर्शों को शिक्षक स्वयं अपने जीवन में उतारकर, विद्यार्थी के लिये अनुकरणीय बनाते हैं। विद्यार्थी को कर्तव्यों का बोध करवाकर उनका व्यक्तित्व विकास करते है। इस प्रकार शिक्षक कक्षा कक्ष की चुनौतियों का सामना करने, अनुशासन तथा प्रशासन व्यवस्था बनाये रखने में अधिक समर्थ होते हैं।

सामान्यत: 30-40 वर्ष की पूर्ण शिक्षण अवधि के लिये शिक्षक का सर्वांगीण प्रशिक्षण किसी भी विधि से संभव नहीं है। सेवाकाल के दौरान होने वाले नवीन परिवर्तनों तथा सुधारों का प्रशिक्षण समय-समय पर आवश्यक होता है। यही सेवाकालीन अभ्यास शिक्षकों को सक्रिय एवं कर्तव्यनिष्ठ बनाये रखता है। शिक्षा क्षेत्र में तेजी से हो रहे डिजिटल व तकनीकी परिवर्तनों से शिक्षकों को अवगत कराने तथा शिक्षा क्षेत्र में तकनीक के व्यापक उपयोग सिखाने के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम होते रहने चाहिये। शिक्षकों को स्मार्ट कक्षा के लिये आवश्यक सभी संसाधनों की पूर्ण जानकारी क्रियान्वयन रूप में उपलब्ध करवायी जाये। वैज्ञानिक व तकनीकी रूप से अपडेट रहने पर ही शिक्षक व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा में शैक्षणिक उत्कृष्टता को बनाये रख सकते हैं। क्योंकि आधुनिकतम तकनीक से शिक्षक की कार्यकुशलता भी बढ़ेगी और विद्यार्थी के परिणाम व उपलब्धियाँ भी प्रभावित होंगे। अत: प्रत्येक वर्ष वर्तमान शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में बदलते हुए परिवेश के अनुरूप तात्कालिक परिवर्तन होने चाहिये। इससे चिकित्सा उद्योग, व्यापार, डिजाइनिंग, आर्किटेक्ट कला आदि क्षेत्रों की तरह शिक्षण को भी व्यवसायिक पहचान प्राप्त होगी। गुणवत्ता पूर्ण आधुनिक प्रशिक्षण के साथ शिक्षकों को प्रदत्त आर्थिक सुरक्षा, शिक्षकों के अधिकारों को सुनिश्चित करती है। शिक्षकों की सामाजिक व राजनैतिक प्रतिष्ठा बढ़ाती है। कॅरियर के रूप में शिक्षण कार्य हेतु शिक्षित युवाओं को आकृष्ट करेगा। शिक्षण क्षेत्र में उत्पन्न व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा ही शिक्षा के स्तर को सुधारने में सहायक होगी।

शिक्षाविद् के रूप में शिक्षक अपने संस्थान का महत्त्वपूर्ण व जागरूक संसाधन होता है। शिक्षक का अपने विषय से सम्बद्ध ज्ञान में पूर्ण निष्णात होना आवश्यक है। विद्यार्थियों द्वारा ग्रहण करने योग्य शिक्षण ही उपयोगी होता है। और यही मौलिक व सृजनशील शिक्षण विद्यार्थियों द्वारा समाज को प्रगतिशील बनाये रखने में मदद करता है। प्रशिक्षण में निरन्तर किये गये आभ्यास का कक्षा कक्ष में समुचित प्रयोग करते हुए शिक्षक अपने अनुभवों द्वारा विद्यार्थियों की प्रतिभा और क्षमता को निखारें, शिक्षक अपने शिक्षण का नियमित मूल्यांकन करें, और उसमें नवाचार तथा रचनात्मकता द्वारा सुधार का प्रयास करते रहें। इस प्रकार शिक्षक द्वारा सीखने व सिखाने के सतत् प्रयत्नों से शिक्षण शैली उत्कृष्ट होगी। शिक्षक के कार्यों की दक्षता से ही शिक्षा की गुणवत्ता परिलक्षित होती है।

भारतीय परम्परागत व सांस्कृतिक विरासत को बनाये रखना तथा वैश्विक स्तर पर व्यवसायिक कौशल एवं उद्यमिता को बढ़ावा देना शिक्षकों के समक्ष एक चुनौती है। अत: शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करने के उद्देश्यों में परिवर्तन करना होगा। शिक्षण में सृजनात्मकता बढाने व अभिव्यक्ति कौशल बढाने के मापदण्ड निर्धारित करने होंगे।

शैक्षणिक सुधारों द्वारा सामाजिक चेतना जाग्रत करने में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। शिक्षा क्षेत्र में उपलब्ध अपार मानव संसाधन का गुणात्मक उपयोग तभी संभव होगा जब उपेक्षित क्षेत्रों और दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षण पहुँचे और सभी उम्र के लोगों को, कामकाजी युवाओं एवं महिलाओं को शिक्षा उपलब्ध हो सके। इस प्रकार के सामाजिक शिक्षा के प्रसार सम्बन्धी शिक्षक प्रशिक्षण के प्रावधान, रोजगार परियोजनाओं में निर्धारित किये जायें। इस प्रकार विद्यालय एवं प्रशिक्षण संस्थान समाज की लघुत्तम शिक्षण इकाई के रूप में सामाजिक शिक्षण का कार्य कर सकेंगे तथा स्थानीय एवं सामुदायिक शिक्षा का प्रसार हो सकेगा।

आज शिक्षा क्षेत्र में संसाधनों की उपलब्धता बढ़ी है साथ ही शिक्षकों की संख्यात्मक वृद्धि के अवसर भी बढ़ रहे हैं। शिक्षण क्षेत्र में नवाचार के प्रोत्साहन से शिक्षकों के लिये नये विकल्प खुलते जा रहे हैं। युवा पीढ़ी यदि प्रशिक्षित होगी तो वह इनका लाभ उठा सकेगी, पूर्ण प्रशिक्षित एवं योग्य शिक्षक ही विद्यार्थियों की एक नई पीढ़ी को जन्म देने तथा ज्ञान आधारित समाज की संरचना करने में सक्षम होगा। ❑

(व्याख्याता रसायन शास्त्र, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पोषित ''उच्चशिक्षा विकास'' 2007 की राष्ट्रीय संगोष्ठी में, एक चौथाई संकाय सदस्यों का चयन अन्य राज्यों में हो, ऐसा सुझाव दिया। यह समस्या सम्पूर्ण शैक्षिक जगत में है, भारत भी इससे अछूता नहीं है। इससे सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था, शोध, नवाचार, शैक्षिक उन्नयन व राष्ट्र के समग्र विकास की अवधारणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। निःसंदेह शैक्षिक अंतःजनन से शैक्षिक अवनयन कि स्थिति उत्पन्न हो रही है। जिसका प्रभाव वैश्विक स्तर पर भी है। अतः शैक्षिक नीति निर्माता इस बात का ध्यान रखें कि प्रतिभा पलायन न हो, योग्य शिक्षक का चयन हो, जो मन से शिक्षा प्रदान करने के लिए समर्पित हों, तभी ऐसे शिक्षार्थी तैयार होंगे जिनकी पहचान उनके शिक्षक होंगे।

शैक्षिक अंतःजनन से शैक्षिक अवनयन

❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तन का माध्यम शिक्षा होती है। समाज, देश व व्यक्ति के निर्माण में भी यही महती भूमिका निभाती है। आध्यात्मिकता की ओर मानवता को लेकर परम-वैभव तक पहुँचाने का काम भी शिक्षा ही करती है। शिक्षा, विभिन्न शैक्षिक, संस्थाओं द्वारा प्रदान की जाती है। शिक्षा प्रदान करने में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। हमारे देश के विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षक चयन की विभिन्न प्रक्रियाएँ हैं। परंतु आवश्यकता इस बात की है कि उचित मनोवृत्ति के शिक्षकों का चयन हो, तभी शिक्षा के उद्देश्य यथा-पहुँच, समानता व गुणवत्ता को प्राप्त किया जा सकेगा। देश में शिक्षा समवर्ती सूची में होने के कारण केन्द्र व राज्य सरकारें शिक्षा संबंधी निर्णय ले सकती हैं। देश में केन्द्रीय विश्वविद्यालय राज्य विश्वविद्यालय, शासकीय महाविद्यालय, डीम्ड विश्वविद्यालय, निजी विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय मान्य संस्थाएँ, अनुदानित व गैर-अनुदानित महाविद्यालय, सार्वजनिक-निजी जनभागीदारी संस्थाएँ आदि उच्च शिक्षा प्रदान करने व उसके प्रचार-प्रसार करने का कार्य कर रही है। उपरोक्त सभी में शिक्षकों की महती भूमिका है, अतः सम्पूर्ण देश में शिक्षकों की चयन-प्रक्रिया पर चिंतन करना आवश्यक है, प्रस्तुत लेख में इसी पर विचार करने का प्रयास किया गया है। राज्य के शासकीय महाविद्यालयों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित योग्यताओं के आधार पर राज्य लोक सेवा आयोग विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा शिक्षकों का चयन करता है, निजी शिक्षण संस्थाओं में शिक्षक चयन का आधार राज्य सरकारों के निर्देशानुसार होता है। राज्य के विश्वविद्यालयों में चयन समिति, विधिवत पारित अध्यादेश के अनुसार होती है, वही शिक्षकों का चयन करती है। विषय-विशेषज्ञ का चयन राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा नामित सदस्य व राज्य सरकारों द्वारा अधिकृत सदस्यों वाली विषय समिति करती है। यह समिति विश्वविद्यालय की विभागीय परिषद् द्वारा प्रस्तावित सूची से विषय-विशेषज्ञों का चयन करती है। ऐसी स्थिति में क्या चयन प्रक्रिया पारदर्शी हो सकती है? केन्द्रीय विश्वविद्यालयों, निजी विश्वविद्यालयों, विश्वविद्यालय मान्य उच्च शैक्षिक संस्थाओं में भी विभिन्न चयन प्रक्रियाएँ हैं।

आज विश्वविद्यालयों द्वारा सामाजिक जिम्मेदारी वहन करने का भी आग्रह किया जा रहा है, वैश्विक स्तर के मानकों को प्राप्त करना, जिसके लिए अधिगम व संसाधन जुटाना, संकाय-विद्यार्थी अनुपात मापदण्डानुसार करने, नवाचार, शोध व अनुसंधान, नई शिक्षा नीति के 33 सूत्रीय विचार-विमर्श के बिन्दुओं में अच्छे शिक्षक निर्माण आदि विषयों की संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है, (MHRD-2015b)। यद्यपि विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं में शिक्षकों के चयन के निर्धारित मापदण्ड

है परंतु क्या समावेशी मनोवृत्ति के योग्य व समर्पित शिक्षकों का चयन किया जा रहा है? 14 जुलाई, 2014 के इंडियन एक्सप्रेस, चंडीगढ़ में न्यूज लाइन के सर्वेक्षण के अनुसार विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के पदों पर भर्ती में पूर्व विद्यार्थियों को वरीयता मिलती है। पंजाब विश्वविद्यालय में 64 प्रतिशत शिक्षक वहीं के शोधार्थी हैं। सामान्यतया ये वे शोधार्थी होते हैं जो विभागों से पीएच. डी. या एम. फिल. उपाधि के लिए पंजीकृत या शोध उपाधि प्राप्त होते हैं। इसी संदर्भ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में संकाय सदस्यों की नियुक्ति को निराशाजनक बताया। कुछ केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में स्थानीय व अन्य राज्यों के शिक्षकों के अनुपात में भारी अंतर है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में 72.4 प्रतिशत शिक्षक मूल-स्थानीय (native) व 20.56 प्रतिशत अन्य राज्यों के हैं, अलीगढ़ केन्द्रीय विश्वविद्यालय में क्रमशः 81 प्रतिशत व 8 प्रतिशत, विश्व भारती में 78.3 प्रतिशत व 21.6 प्रतिशत शिक्षक स्थानीय व अन्य राज्यों से शिक्षक हैं, जबकि दिल्ली विश्वविद्यालय में स्थिति में परिवर्तन है, यहाँ 40.25 प्रतिशत स्थानीय व 49.81 प्रतिशत अन्य राज्यों के शिक्षक हैं। इसमें कला, विज्ञान, विधि, वाणिज्य, व सामाजिक विषय है, जबकि विश्व भारती विश्वविद्यालय में विज्ञान व मानविकी विषय शामिल हैं। (U.G.C., 1984 Report of the committee to enquire into the working of Central Universities). इसी प्रकार कॅरियर एडवान्समेंट योजना के तहत् स्थानीय शिक्षकों को प्राथमिकता प्रदान की गई है।

विश्वविद्यालय अपने आंतरिक विभागीय अभ्यर्थियों को प्राथमिकता प्रदान करती है, जिसमें जाति, विचारधारा, समुदाय कारक आदि के प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता है। जब वहीं के शोधार्थी या पूर्व छात्रों को अतिथि या संविदा पर विभाग में नियुक्त किया जाता है तब विभाग व अतिथि शिक्षक के मध्य एक अलिखित अनुबंध-पत्र (unwritten bond) बन जाता है व वह अतिथि शिक्षक सहानुभूति प्राप्त कर लेता है, इसी कारण चयन के समय उन्हें वरीयता मिल जाती है। कई राज्यों में स्थानीय निवासी प्रमाण पत्र व राज्य भाषा की अनिवार्यता के कारण अन्य राज्यों के योग्य अभ्यर्थी चयन में स्थान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार अपने शोधार्थी को संकाय सदस्य के रूप में चयन करना, यह संस्थागत स्वभाव (institutional practice) बन गया है, यह वैश्विक स्तर पर भी हो रहा है। अतः विश्वविद्यालयों द्वारा अपने शोध विद्यार्थी जो एम. फिल. या पीएच. डी. धारक हो, उसका चयन करना शैक्षिक अंत:जनन (academic inbreeding) कहलाता है। इस प्रकार चयनित शिक्षकों को शैक्षिक अंत:प्रजात समूह (academic inbred) कहा गया व अन्य राज्यों या अन्य विश्वविद्यालयों द्वारा अध्ययन करने वाले, उस संस्था में चयनित शिक्षकों को परप्रजात शैक्षिक समूह (non-inbred academics) की संज्ञा दी गई। फ्रान्सिसको वेलोसा (Management Science, Vol.56, No. 3, 414-429) के अनुसार यूरोप, जापान, मैक्सिको में इसके अधिक उदाहरण

हैं परंतु अमेरिका में बहुत कम है। इस प्रकार के चयन से विद्वत् परिणाम (scholarly output) कम होंगे, ये संकाय सदस्य अपने विभाग प्रमुख व संस्था के प्रति ज्यादा केन्द्रित होंगे व विश्व के वैज्ञानिक व मानविकी समाज से दूर होंगे जबकि अन्य चयनित शिक्षक, शोध व नवाचार के प्रति ज्यादा सजग होंगे। संस्थागत चयनित शिक्षक, शिक्षण व अन्य शैक्षिक गतिविधियों में असमानुपाती (disproportionately) साझेदार होंगे। इससे शिक्षा जगत (academia) को नुकसान होगा व यह प्रवृत्ति संस्थागत अचलता (institutional immobility) को बढ़ावा देगी। ह्यूगो होर्टा (Hugo Horta) द्वारा विश्वविद्यालय जगत समाचार (University World News, The Global Window to Higher Education, issue No. 291) में प्रकाशित लेख के अनुसार जापान में किये गए शोध बताते हैं कि कुछ विश्वविद्यालय वहाँ के स्नातक, स्नातकोत्तर व पीएच. डी. करने वाले विद्यार्थी को प्रथम अकादमी नियुक्ति उसी विश्वविद्यालय में देती है, उसे चार रेखा जीविका रचना (four line career structure) कहा गया है।

टर्की के विश्वविद्यालयों में वर्तमान में किये अध्ययन के अनुसार अंत:प्रजात शिक्षाविद् (inbred academics) के शोध अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कम दृष्टिगोचर होते हैं, परं:प्रजात समान पद शिक्षाविद् (inbred academics) की तुलना में। अंत:प्रजात शिक्षाविद् (inbred academics) को एच-सूचांक (h-index) मिला है, यह उत्पादकता (productivity) व प्रकाशित शोध के प्रभाव का आकलन करता है, यह 89 प्रतिशत कम है, पर-प्रजात शिक्षाविद् (non-inbred academics) को प्राप्त सूचांक से। इस प्रकार दोनों समूह की शोध उत्कृष्टता का आकलन किया जा सकता है। उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि शैक्षिक अंत:जनन व शैक्षिक उत्पादकता (academic productivity) में विपरीत संबंध है, क्योंकि अलिखित अनुबंध-पत्र धारक को वरीयता मिलती है।

भारत में शिक्षा नीति निर्धारित शैक्षिक अंत:जनन (academic inbreeding) से परिचित थे, इसीलिए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (2006) ने इसके प्रभाव का आकलन कर कहा कि इससे शैक्षिक गुणवत्ता प्रभावित होगी व संकुचितता (parochialisation)को विश्वविद्यालयों में प्रोत्साहन मिलेगा। विभिन्न विश्वविद्यालय, चयन में आंतरिक अभ्यर्थियों को चयन में वरीयता देती है, जबकि उन्हें अन्य योग्य शिक्षक उपलब्ध होते हैं। अंत:जनन (inbreeding) के कारण सहायक प्रोफेसर, सहप्रोफेसर व प्रोफेसर के पदों की अपेक्षा रखने वाले शिक्षकों को निराशा मिलती है। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (RUSA) का उद्देश्य ''गुणवत्ता व शोध'' पर केन्द्रित है, जबकि शैक्षिक अंत:जनन (academic inbreeding) के कारण शोध प्रभावित हुआ है, जिसका उल्लेख मानव संसाधन विकास मंत्रालय (MHRD,2013) ने किया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने (2003) इस प्रवृत्ति के प्रभाव का आकलन कर बताया कि इससे उत्पादक व स्वतन्त्र शैक्षिक सम्वर्द्धन (productive, independent, academic culture) का विकास नहीं होता है।

उपरोक्त परिदृश्य को ध्यान में रखने के बाद अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार शैक्षिक अंत:जनन (academic inbreeding) से निजात पाई जाये, ताकि समर्पित व निष्ठावान योग्य शिक्षकों का चयन उच्च शिक्षण संस्थाओं में हो सके। 2003 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने गोल्डन जुबली सेमीनार में भारतीय प्रशासनिक सेवा व भारतीय पुलिस सेवा की तरह, अखिल भारतीय स्तर पर परीक्षा के द्वारा विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में शिक्षकों का चयन इसी प्रकार की प्रक्रिया के द्वारा, कराने का सुझाव दिया। साथ ही विश्वविद्यालयों में 25 प्रतिशत शिक्षकों का चयन राज्य के बाहर के शिक्षकों का हो, जिससे राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को प्रोत्साहन मिलेगा। अधिक प्रतिस्पर्द्धा व पारदर्शिता हेतु 2007 में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने कहा कि आधे या दो तिहाई शिक्षकों का चयन स्थानीय योग्य अभ्यर्थियों का हो व बाकी स्थानों पर अन्य राज्यों के शिक्षकों को प्रतिनिधित्व मिले। राष्ट्रीय तकनीकी संस्था (NIT) व भारतीय तकनीकी संस्थान (IIT) ने शैक्षिक अंत:जनन (academic inbreeding) को रोकने के लिए स्वयं के संस्थान से पीएच. डी. व एम. टेक. करने वाले विद्यार्थियों का 3 वर्षों तक अपने स्वयं के विभाग में चयन नहीं करते हैं, (MRHD,2007)। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पोषित ''उच्चशिक्षा विकास'' 2007 की राष्ट्रीय संगोष्ठी में, एक चौथाई संकाय सदस्यों का चयन अन्य राज्यों में हो, ऐसा सुझाव दिया। राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान के अनुसार 35 प्रतिशत संकाय सदस्यों के स्वीकृत पद केन्द्रीय विश्वविद्यालयों व 40 प्रतिशत पद राज्य विश्वविद्यालयों में रिक्त पड़े हुए हैं। राष्ट्रीय मूल्यांकन व प्रत्यायन परिषद् के मूल्यांकन मापदण्डों में शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात भी महत्त्वपूर्ण है। उपरोक्त मापदण्डों की आड़ में कही अंत:जनन शिक्षक चयन प्रक्रिया को प्रोत्साहन तो नहीं मिल रहा है? अत: शिक्षकों के चयन को प्राथमिकता प्रदान करते हुए शैक्षिक अंत:जनन प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना होगा। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि शैक्षिक अंत:जनन समस्या सम्पूर्ण शैक्षिक जगत् में है, भारत भी इससे अछूता नहीं है। इससे सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था, शोध, नवाचार, शैक्षिक उन्नयन व राष्ट्र के समग्र विकास की अवधारणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। नि:संदेह शैक्षिक अंत:जनन से शैक्षिक अवनयन कि स्थिति उत्पन्न हो रही है। जिसका प्रभाव वैश्विक स्तर पर भी है। अत: शैक्षिक नीति निर्माता इस बात का ध्यान रखें कि प्रतिभा पलायन न हो, योग्य शिक्षक का चयन हो, जो मन से शिक्षा प्रदान करने के लिए समर्पित हों, तभी ऐसे शिक्षार्थी तैयार होंगे जिनकी पहचान उनके शिक्षक होंगे। ❑

(विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग,
सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़)

आदर्श शिक्षक का ज्ञान से भरा होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उसमें उस ज्ञान के संप्रेषण की कुशलता भी होनी चाहिये। जिसमें ये ज्ञान और संप्रेषण कुशलता दोनों होते हैं वह शिक्षकों में मूर्धन्य माने जाते हैं। ऐसे शिक्षकों से समाज युगानुकूल दिशा ग्रहण करता है। शिक्षक को समाज में आदर्श मानने की धारणा सामान्य जन के अन्त:करण में विद्यमान रहती है। इसलिये उसे अपने आपको सर्वदैव उत्तम, चरित्रवान एवं संदेशप्रद व्यक्तित्व के रूप में स्थापित रखना चाहिये। तैत्तरीयोपनिषद में कहा गया है कि समाज में यदि किसी कार्य में भ्रम उपस्थित हो तो समदर्शी, योग्य एवं उदार स्वभाव वाले गुरुओं से परामर्श लेना चाहिये और वहाँ उस स्थिति में वे जैसा आचरण करते हों वैसा ही आचरण करना चाहिये

प्राचीन गुरु ही सच्चा आदर्श

❑ **डॉ. ओम प्रकाश पारीक**

शिक्षा शब्द में विद्या का ही भाव निहित है विद्या के उपादान को शिक्षा कहते हैं, शिक्षा में विद्या का योग होने पर ही वह सार्थक होती है। हमारी प्राचीन विद्यादान पद्धति में विद्या प्रदान करने वाले गुरु एवं विद्या प्राप्त करने वाले शिष्य दोनों का ही आदर्श स्वरूप वर्णित है-

गु शब्दस्त्वन्धकारे स्याद् रु शब्दस्तन्निरोधके।
अन्धकार निरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।।

(गुरुगीता 1/9)

अर्थात् '**गु**' शब्द अन्धकार का वाचक है तथा '**रु**' शब्द उस अन्धकार का निरोध अर्थात् हटाने वाला है, इस प्रकार जो सभी प्रकार के अज्ञान रूपी अन्धकार को हटाकर सन्मार्ग पर ले जाता है वह गुरु कहलाता है। शिष्य शब्द भी 'शास्' धातु से बना है जिसका अर्थ है जिस पर शासन किया जा सके, जिसे अनुशासित किया जा सके। शिष्य अपने को पूर्णरूपेण अनुशासित करने के लिये गुरु के समक्ष प्रतिबद्ध रहता है। शिक्षक एवं शिष्य दोनों आदर्श ही होते हैं आदर्श गुण इन शब्दों में ही अनुस्यूत रहता है। किन्तु वर्तमान-कालिक व्यवस्थाओं में इनके मूलस्वरूप एवं मूल्यों का ह्रास होने के कारण हम इनके आदर्शस्वरूप का चिन्तन करते हैं।

हमारी भारतीय संस्कृति एवं शास्त्रों में शिक्षक अर्थात् गुरु का महत्त्व सर्वोपरि वर्णित है। वह उसके गरिमामय, उत्कृष्ट, लोकोपकारक एवं अलौकिक स्वरूप के कारण ही है। गुरु की परमात्मा से भी अधिक महिमा मानी गयी है। इसीलिये यह सूक्ति प्रसिद्ध है-

गुरु गोबिन्द दोऊँ खड़े काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपने गोबिन्द दियो बताय।।

मानव जीवन को सार्थकता प्रदान करने वाली शिक्षा ही होती है। ऋषियों ने अपनी क्रान्तदर्शी प्रज्ञा से मानव जीवन की सार्थकता के विषय में बहुत पहले ही प्रतिपादित किया है तथा शिक्षा का स्वरूप व उद्देश्य बतलाया है 'सा विद्या या विमुक्तये' विद्ययाऽमृतमश्नुते अर्थात् विद्या से सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर व्यक्ति अमरत्व को प्राप्त करता है। हमारे दार्शनिक सिद्धान्त आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक दु:खों की निवृत्ति को मानव जीवन की सफलता मानते हैं। मानव जीवन धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों में प्रवाहित होता हुआ अन्तत: परमात्मतत्व में लीन हो जाये, यही

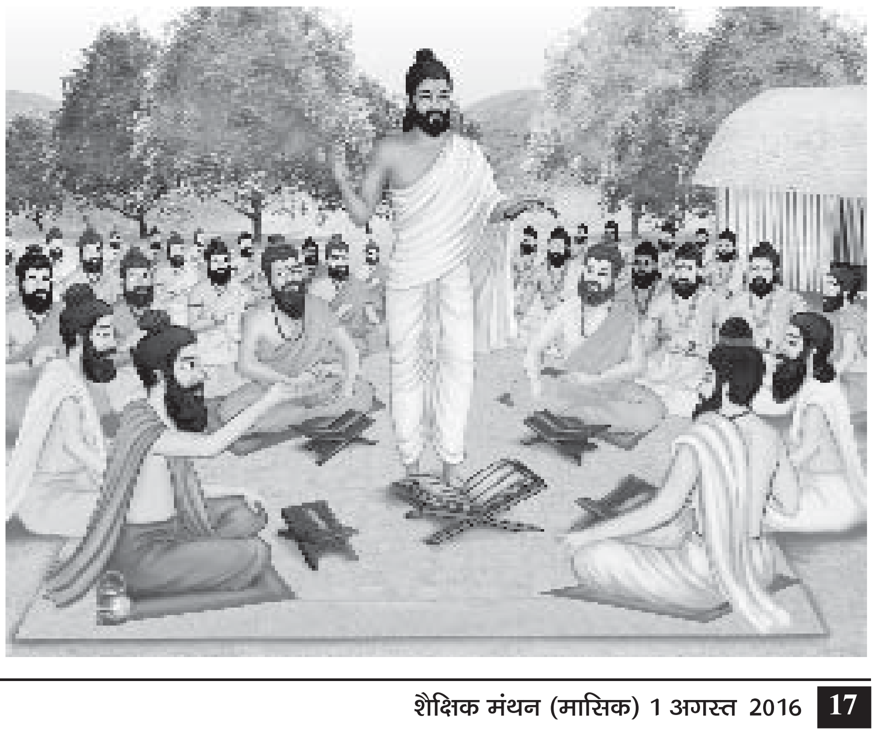

जीवन की सार्थकता है एवं शिक्षा का उद्देश्य है। शिक्षक अपने गुणों एवं चरित्र से जीवन की इस सार्थकता को विद्यार्थियों में समाविष्ट कर दे वही आदर्श शिक्षक है। अतएव गुरु को ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर मानते हुये उसे परब्रह्म स्वरूप माना है। गुणों का सृजन करने वाले ब्रह्मा, गुणों का विकास करने वाला विष्णु तथा अवगुणों एवं अज्ञान का संहार करने वाला महेश्वर है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

महानारायणोपनिषद् में गुरु को साक्षात् आदि नारायण रूप भी माना है–

'गुरुः साक्षादादिनारायणः पुरुषः'

आदर्श गुरु हमारे मिथ्या–बोध को नष्ट कर शास्त्रों के सच्चे अर्थ का ज्ञान करवाते हैं। हमारी सुगति और कुगति को अलग–अलग समझाकर पुण्य और पाप का भेद व्यक्त करते हैं। हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इस प्रकार प्रवृत्ति एवं निवृत्ति को सुनिश्चित करते हैं। इस संसार सागर की गुरु ही नौका है उनके बिना हम यहाँ पार नहीं उतर सकते –

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं
सुगति कुगति मार्गों पुण्यपापे व्यनक्ति।
अवगमयति कृत्याकृत्य भेदं गुरुर्यो
भवजलनिधिपोतस्तं बिना नास्तिकश्चत्।।

जिस प्रकार माँ अपने बालक को गर्भ में रख उसे अपने रक्त से पालती है एवं उसमें गुणों का आधान करती है। वैसे ही आदर्श शिक्षक वह है जिसमें शिष्य के प्रति अपनत्व होता है, वह शिष्य को अपने अन्दर आत्मसात् कर लेता है और उसके जीवन में स्वयं प्रतिबिम्बित होता है। अथर्ववेद में इस बात को समझाया गया है कि उपनयन संस्कार के द्वारा ब्रह्मचारी को आचार्य अपने गर्भ में तीन रात्रि रखकर उसे कलुषित संस्कारों से मुक्त करता हुआ उसे द्वितीय जन्म प्रदान करता है–

आचार्य उपनयमानो
ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रिस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं
जातं दृष्टुमभिसंयन्ति देवाः।

आदर्श शिक्षक अथाह ज्ञान का सागर होता है जो प्रकृति से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की छिपी शक्तियों के ज्ञान करवाने वाला अद्वितीय व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित है।

आचार्यस्ततक्ष नभसी इमे।
उर्वी गम्भीरे पृथिवी दिवं च।।

आचार्य रूप में गुरु उत्तम आचरण को शिष्य में उतारता है एवं उसे जीवन के अभीष्ट अर्थो (प्रयोजन) के संग्रह के योग्य बनाता है तथा उसमें उत्तम बुद्धि भर देता है। **आचार्यः कस्मात्? आचार्यः आचारं ग्राहयति आचिनोत्यर्थान् आचिनोति बुद्धिमिति वा** इसलिये वह आचार्य कहा गया है।

'उपनीयः गुरुः शिष्यं
शिष्टाचारांश्च शिक्षयेत'

अर्थात् गुरु शिष्य को शिष्टता एवं आचरण की शिक्षा दे। अपने आदर्श स्वरूप में शिक्षक अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करता है वह प्रेरक, सूचक, वाचक, दर्शक, शिक्षक एवं बोधक होता है–

प्रेरकः सूचकश्चैव वाचको दर्शकस्तथा। शिक्षको बोधकश्चैव षडेते गुरवः स्मृताः।।

वस्तुतः पूरा विश्व आज भोगवादी प्रवृत्ति से प्रेरित हो रहा है। जीवन का उद्देश्य 'खाओ–पीओ तथा मौज उड़ाओ' पर आधारित हो गया है। भारत में अंग्रेजों ने भारतीयों पर अक्षुण्ण प्रभुत्व स्थापित करने के लिये शिक्षा एवं संस्कृति पर चोट की एवं यहाँ के लिये ऐसी शिक्षा प्रदान करने की योजना बनायी गयी जो विद्यार्थियों को वास्तविक जीवन के उद्देश्यों से तथा संस्कृति से दूर रखकर उनकी मानसिकता में भौतिकवाद एवं गुलामियत भर दे। दुर्भाग्य से देश के स्वतन्त्र होने पर भी अपनी राजनैतिक आकांक्षाओं की पूर्त्ति के लिये यहाँ के शासकों ने उस शिक्षा पद्धति को जारी रखा। परिणामतः शिष्य, शिक्षक तथा शिक्षालय एवं सम्पूर्ण शैक्षिक पर्यावरण विकृतियों के आ जाने से शिक्षा के सार्थक उद्देश्यों की प्राप्ति से दूर है। इस व्यवस्था का मुख्य धुरी रूप जो शिक्षक है वह अपनी प्राचीन गरिमा को खोकर एक वेतन भोगी कर्मचारी बन गया है।

इस सम्पूर्ण व्यवस्था में सुधार के लिये शिक्षक को अपने प्राचीन स्वरूप गुरु के समान गरिमामय बनना होगा। वर्तमानकाल में ऐसे आदर्श शिक्षक की आवश्यकता है जो कि आधुनिक वैश्विक प्रगति की भारतीय परिप्रेक्ष्य में समालोचना कर अपने विद्यार्थियों में ज्ञान भरे। वह पुराने ज्ञान एवं नये ज्ञान दोनों की परीक्षा कर दोनों का सार्थक समन्वय कर शिक्षा प्रदान करे। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में इस बात को बहुत पहले ही व्यक्त कर दिया था–

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न
चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यातरद्भजन्ते
मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।।

अर्थात् न तो पुराना होने से सब कुछ अच्छा होता है, न ही नया होने से सब बुरा ही होता है। विद्वान् लोग दोनों की परीक्षा कर श्रेष्ठ का ग्रहण करते हैं लेकिन मूर्ख व्यक्ति दूसरों के द्वारा कही बात पर ही विश्वास करते हैं।

आदर्श शिक्षक का ज्ञान से भरा होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उसमें उस ज्ञान के संप्रेषण की कुशलता भी होनी चाहिये। जिसमें ये ज्ञान और संप्रेषण कुशलता दोनों होते हैं वह शिक्षकों में मूर्धन्य माने जाते हैं। ऐसे शिक्षकों से समाज युगानुकूल दिशा ग्रहण करता है। शिक्षक को समाज में आदर्श मानने की धारणा सामान्य जन के अन्तःकरण में विद्यमान रहती है। इसलिये उसे अपने आपको सर्वदैव उत्तम, चरित्रवान एवं संदेशप्रद व्यक्तित्व के रूप में स्थापित रखना चाहिये। तैत्तरीयोपनिषद में कहा गया है कि समाज में यदि किसी कार्य में भ्रम उपस्थित हो तो समदर्शी, योग्य एवं उदार स्वभाव वाले गुरुओं से परामर्श लेना चाहिये और वहाँ उस स्थिति में वे जैसा आचरण करते हों वैसा ही आचरण करना चाहिये–

'अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणा समर्शिनः युक्ताः आयुक्ताः। अलूक्षाः धर्मकामा स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन तथा तत्र वर्तेथाः।।'

आदर्श शिक्षक शिष्य के भविष्य में स्वयं की सार्थकता देखता है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में गुरु के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं थी, शिक्षक प्रशिक्षण आधुनिक शिक्षा

पद्धति की देन है। उस काल में तो शिक्षक अपने अध्ययन काल में स्वाभाविकत: ही गुरु के रूप में प्रशिक्षित होता रहता था। विद्याध्ययन हेतु उपनयन संस्कार के पश्चात् उसे सर्वोत्तम आचरण की, कार्यकुशल बनने की, वाक्पटु होने की, कर्तव्याकर्तव्य विवेक की शिक्षा दी जाती थी एवं चौदह विद्याओं का ज्ञान करवाया जाता था। विद्यार्जन के पश्चात् विद्यार्थी गुरुकुल से समाज में लौटकर अपने कार्यों में प्रवृत्त होते थे, कुछ विद्यार्थी नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहलाते थे जो कि आजीवन गुरु के समीप ही रहकर अध्ययन-अध्यापन करते थे।

ऐसे विद्यार्थी गुरु के पश्चात् भी उसी स्थान पर निष्ठापूर्वक रहते हुये विद्या का प्रसार करते थे। जिन विद्यार्थियों का विद्यार्जन के बाद विवाह संस्कार होता था उनमें कुछ आजीवन अध्ययन-अध्यापन में संलग्न रहकर अपने आश्रमों में गुरु के रूप में विद्यार्थियों की शिक्षा-दीक्षा करते थे। ऐसे आचार्यों, गुरुओं एवं शिक्षकों को मनुष्य जीवन के उद्देश्यों का ज्ञान होता था इसलिये वे विद्यार्थियों को जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक श्रेष्ठ एवं सार्थक शिक्षा प्रदान करते थे। ऐसी शिक्षा उनके इहलोक में तो अभ्युदयकारक होती थी साथ ही नि:श्रेयस साधिका भी बनती थी।

इस प्रकार आज के आदर्श शिक्षक को प्राचीन गुरु के व्यक्तित्व को आत्मसात् करने की आवश्यकता है। ऐसे शिक्षक की सर्वोच्च प्राथमिकता में अध्ययन-अध्यापन होना चाहिये एवं उसका हृदय राष्ट्रप्रेम एवं गौरव की भावना से भरा हो। वह जीवन के सार्थक उच्च आदर्श एवं नैतिक आचरण से युक्त हो समाज में ग्राह्य हो क्योंकि आचरण से दूषित व्यक्ति चाहे सम्पूर्ण वेदों का विद्वान् हो तथापि वेद उसे पवित्र नहीं करते। **''आचारहीनं न पुनन्ति वेदा:''** आदर्श शिक्षक के लिये निजी जीवन एवं सामाजिक जीवन की दोहरी व्यवस्था नहीं है उसका निजी जीवन समाज के समक्ष खुला हो जिससे समाज संदेश लेकर दिशा प्राप्त करे। ❑

(व्याख्याता, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग बा.भ.दा.राज. महाविद्यालय, चिमनपुरा, शाहपुरा)

शिक्षक चयन, पदस्थापन एवं उनका अभिनवीकरण

❑ डॉ. पी.एल. चतुर्वेदी

किसी भी शिक्षण व्यवस्था का आधार शिक्षक ही होते हैं। इस दृष्टि से शिक्षकों के गुण, उनके अपने कार्य के प्रति समर्पण, योग्यतायें, कार्य में उनकी निष्ठा, श्रेष्ठ चरित्र और व्यवहार, उनका व्यक्तित्व, भाषा पर अधिकार, सम्प्रेषण कुशलता आदि पर विशेष आग्रह रखने की आवश्यकता है। शिक्षकों को अपने कार्य और व्यवहार में आदर्शवाद की ओर प्रेरित होना चाहिए क्योंकि उनके विचलन से छात्रों के व्यक्तित्त्व पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उनके समक्ष केवल वेतनभोगी के रूप में काम करने के स्थान पर अपने कर्त्तव्य के प्रति समर्पण भाव से प्रेरित होकर काम करने की आवश्यकता है, तभी वे छात्रों को प्रभावित कर सकेंगे।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उच्च शिक्षा की व्यवस्थाओं के अनुरूप शिक्षकों की योग्यताएँ, उनके वेतनमान, कार्यभार एवं छात्र-शिक्षक अनुपात आदि के सम्बन्ध में मानदण्ड निर्धारित किये हुए हैं साथ ही विभिन्न पदों पर शिक्षकों की श्रेणियों का अनुपात भी अनुशंसित किया है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों की नियुक्ति में इन समस्त मानदण्डों का कड़ाई से पालन किया जाये। शिक्षकों के विभिन्न पद लम्बे समय तक रिक्त रहते हैं और उन पर विधिवत नियुक्ति के स्थान पर संविदा शिक्षक नियुक्त कर किसी प्रकार काम चलाने की नीति का अनुसरण अनेक वर्षों से किया जा रहा है। ऐसे संविदा पर काम करने वाले शिक्षक न तो संस्थान और छात्रों के प्रति अपनत्व का भाव रख पाते हैं, न उसमें दायित्वबोध पैदा हो पाता है और न उत्तरदायित्व निर्धारित किया जा सकता है। ये शिक्षक भी अपने भविष्य के सम्बन्ध में आशंकित रहते हैं। शिक्षक के लिए आवश्यक पुस्तकालय, वाचनालय, प्रायोगिक प्रयोगशालाएँ एवं संस्थान की सह-शैक्षिक गतिविधियों में भी इनका योगदान अपेक्षानुसार नहीं हो पाता। वर्तमान में आयोग द्वारा निर्धारित छात्र-शिक्षक अनुपात की उपेक्षा कर कक्षाओं के विभिन्न वर्गों में छात्रों की संख्या का निर्धारण शासकीय आदेशों से कर दिया जाता है। ऐसे सारे तदर्थ आदेश संस्थाओं की शैक्षिक गुणवत्ता और छात्रों के सर्वांगीण विकास को प्रभावित कर रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रतिवर्ष अगले सत्र के कार्यभार का आकलन सत्र के मध्य में ही पूर्ण कर अगले सत्र के लिए चयन एवं नियुक्ति की व्यवस्था समय से की जाये, जिससे सत्र के प्रारम्भ से ही व्यवस्थायें सुचारू रूप से संचालित हो सके।

शिक्षकों के सतत् गुणात्मक विकास के लिए भी निश्चित कालावधि में पुनश्चर्या एवं अभिनिवेशन कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए जिसमें शिक्षकों के भाग लेने की बाध्यता हो। इससे वे अपने ज्ञान को निरंतर अद्यतन बनाये रख सकेंगे।

संस्थान द्वारा विभिन्न विषयों पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन एवं कार्यशालाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए और शिक्षकों को उन कार्यक्रमों में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। वर्तमान में प्रशासन द्वारा इस सहभागगिता में व्यवधान डालने की परम्परा बन गई है, जिससे शिक्षक का सतत् विकास प्रभावित होता है। वस्तुत: शिक्षकों के शैक्षिक विकास पर लगाई राशि व्यय नहीं अपितु एक विनिवेश है जिसका लाभ संस्थान को भी मिलता है।

शिक्षक के साथ एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू शिक्षणेत्तर अधिकारियों और कर्मचारियों की उपलब्धता भी है। संस्थान की शिक्षण व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए इनके श्रेणीवार पद एवं संख्या निर्धारित हों, उतने पद सृजित किये जायें और सृजित कर उन पर समय से नियुक्तियाँ करने की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अभाव से शिक्षण कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ❑

(साभार-विश्वविद्यालय दृष्टिपत्र समिति का प्रतिवेदन)

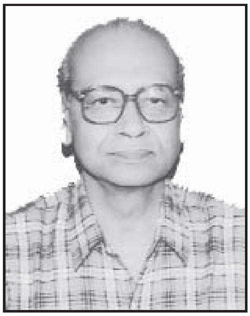

विश्वविद्यालयों के गुणात्मक स्तर, प्रतिष्ठा एवं राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय छवि के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है – प्रोफेसरों का चयन। प्रोफेसर ही उसकी आत्मा होते हैं और उसे प्रगति के लिये ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसीलिये लेखक इनके चयन में स्वत: पदोन्नति की कोई भी भूमिका नहीं देखता। एक प्रोफेसर को ज्ञान का भंडार और उच्चकोटि का शोधकर्ता होना चाहिये। विश्वविद्यालयों में आचार्यों की नियुक्ति का सीधा संबंध राष्ट्र की प्रगति एवं उसकी वैचारिक सांस्कृतिक उन्नति से होता है। एक आकलन के अनुसार इस समय इन संस्थानों में लगभग छ: हजार पद रिक्त हैं। निश्चित रूप से यह स्वर्ण अवसर है जब उचित मानदंडों के आधार पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जा सकती है। अवश्य ही मानदंडों में किसी भी प्रकार की ढिलाई अक्षम्य अपराध के सदृश्य ही होगी।

विश्वविद्यालयों में आचार्यों का चयन

❑ **डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल**

बरसाती मेंढ़कों की भाँति बढ़ती जाती विश्वविद्यालयों की संख्या के दौर में इस समय देश का उच्चतर शिक्षा परिदृश्य संकट से ग्रस्त दिखाई दे रहा हैं। वर्ष 2015 में चीन के शंघाई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित विश्व के 500 सर्वोत्कृष्ट उच्चतर शिक्षा संस्थानों की सूची में एक भी भारतीय विश्वविद्यालय नहीं है। वर्ष 2016 की अमेरिका के क्यू.एस. उच्चतर शैक्षिक तंत्र क्षमता श्रेणी वैश्विक आकलन (Hessr) रपट में भारत विश्व में केवल 24वाँ स्थान पाने में सफल हो सका। भारत में विश्वविद्यालयीय शिक्षा की इस दयनीय दशा के अनेकों कारण हैं, परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है आचार्यों के चयन की घटिया और दोषपूर्ण प्रक्रिया। स्मरणीय है कि विश्वविद्यालय ही किसी राष्ट्र को वैचारिक और सांस्कृतिक नेतृत्व प्रदान कर अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर उसकी छवि को उभारने का कार्य करते हैं और ऐसा वे केवल कुशल, ज्ञानवान और पांडित्य के स्वामी आचार्यों के माध्यम से कर पाते हैं। इस दृष्टि से स्पष्ट है कि आचार्यों के चयन और नियुक्ति की प्रक्रिया सदैव दोषरहित और पारदर्शी होनी चाहिये।

निम्नतम स्तर अर्थात् असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर एक घटिया व्यक्ति का चयन विश्वविद्यालय के लिये लगभग 30 वर्षों की लंबी अवधि तक केवल भार बन कर रह जाता है और इसी कारणवश उसकी नियुक्ति में अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। असिस्टेंट प्रोफेसर ऐसा होना चाहिये जो न केवल विषय के नवीनतम ज्ञान को विद्यार्थी तक प्रभावी ढँग से सम्प्रेषित करने में सक्षम हो बल्कि उसमें अनुसंधान की ललक भी हो। ऐसा इसलिये कि विश्वविद्यालयों में शोध का महत्त्व प्राथमिक एवं नियमित कक्षा में शिक्षा दान का महत्त्व द्वितीयक ही होता है जबकि उच्चतर शिक्षण महाविद्यालयों में स्थिति बिलकुल उलट होती है। इसीलिये ऐसे पद पर उच्चकोटि के व्यक्ति के चयन की कुछ शर्तें होती हैं। पहली तो यही कि विभाग से ही पीएच.डी. किये व्यक्तियों को सिरे से नकार दिया जाय – उन्हें उम्मीदवारी के अधिकार से ही वंचित कर दिया जाय। भारतीय प्रौद्योगिक संस्थानों आदि कतिपय शीर्ष शिक्षण संस्थानों में यह व्यवस्था काफी समय से चली आ रही है। इसका (इनब्रीडिंग समाप्त करने का) लाभ यह होता है कि विभाग में अनुसंधान को नये से नये आयाम बराबर मिलते रहते हैं। दूसरा लाभ यह होता है कि अध्यक्ष पर व्यक्ति विशेष के चयन

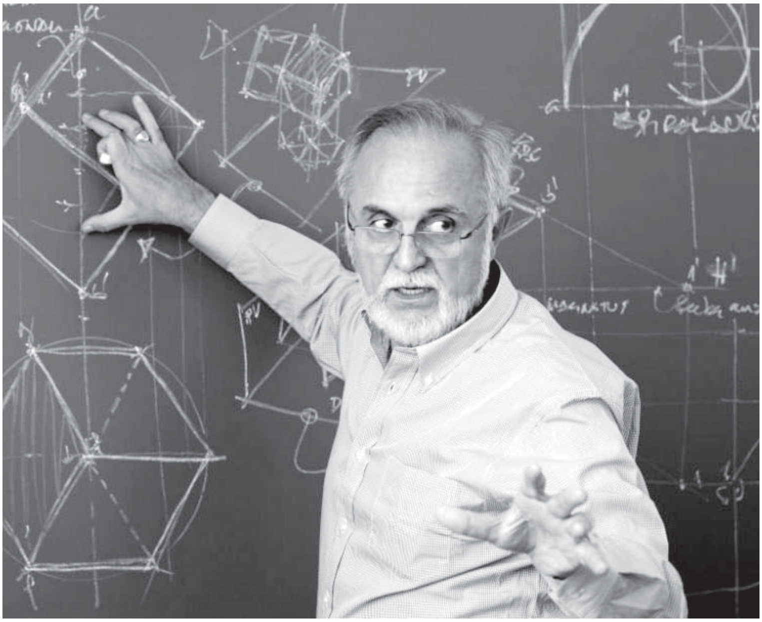

के लिये विभाग के अंदर से कोई दबाव नहीं होता और प्रक्रिया स्वत: ही अधिक पारदर्शी और निष्पक्ष बन जाती है। दूसरी शर्त यह कि चयन समिति में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का प्रतिनिधि जितनी दूर का हो उतना अच्छा। इससे भी चयन के उच्चतम मापदंडों को बनाये रखने में सहायता मिलेगी। नियुक्ति के पश्चात् असिस्टेंट प्रोफेसरों के लिये प्रतिवर्ष एकाधिक ओरिएंटेशन अथवा रिफ्रेशर कार्यक्रमों में सहभागिता करने की बाध्यता होनी चाहिये। ऐसे नवनियुक्त लोग प्रारंभ के कुछ वर्षों तक अधिक से अधिक ज्ञान अपने में समाहित करें तो उनके आगे के कॅरियर में पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की जमीन निश्चित रूप से तैयार होगी जो विश्वविद्यालय के लिये भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होगी। कहना न होगा कि शिक्षण के अतिरिक्त थोड़ा सा अनुसंधान कार्य भी अपेक्षित होना ही चाहिये।

एसोशियेट प्रोफेसरों (रीडरों) का चयन सीधे ही अथवा असिस्टेंट प्रोफेसर के स्वत: प्रमोशन से हो सकता है। परंतु स्वत: प्रमोशन के लिये उम्मीदवार के अकादमिक कार्यों की सूक्ष्म जाँच पड़ताल आवश्यक है। इस संबंध में आयोग द्वारा प्रचारित वार्षिक प्रदर्शन सूचक रपट सहायक होगी। इस रपट में कई खंड होते हैं जैसे शोधपत्र, शोध प्रोजेक्ट, शोध निर्देशन (पी.एच.डी. अथवा एम.फिल.), कॉन्फ्रेंसों में सहभागिता आदि। पहले इनमें से प्रत्येक में अंक प्राप्त करने पड़ते थे जो युक्तियुक्त था। परंतु आयोग का नया नियम कि पूरे अंक एक ही खंड से भी प्राप्त किये जा सकते हैं – पश्चगामी ही सिद्ध होगी। सूचक रपट के प्रभावी होने के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति ने उन सभी क्षेत्रों में अच्छा कार्य किया हो जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है। दूसरे शब्दों में, उसकी शैक्षणिक एंव शोधगत प्रतिभा – दोनों का ही गंभीर एवं तर्कयुक्त आकलन चयन समिति के सदस्यों द्वारा अवश्य किया जाना चाहिये। ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति, उसका प्रदर्शन कैसा भी रहा हो, को पदोन्नत करने की वर्तमान प्रवृत्ति अंतत: घातक सिद्ध होती है।

विश्वविद्यालयों के गुणात्मक स्तर, प्रतिष्ठा एवं राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय छवि के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है – प्रोफेसरों का चयन। प्रोफेसर ही उसकी आत्मा होते हैं और उसे प्रगति के लिये ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसीलिये लेखक इनके चयन में स्वत: पदोन्नति की कोई भी भूमिका नहीं देखता। एक प्रोफेसर को ज्ञान का भंडार और उच्चकोटि का शोधकर्ता होना चाहिये। इन बातों के आकलन के लिये आवश्यक है कि चयन समिति में विशेषज्ञ शीर्ष कोटि के हों और आयोग का प्रतिनिधि ऐसा हो जो उम्मीदवार के अनुसंधान क्षेत्र से तो भलीभाँति परिचित हो ही, विश्वविद्यालय के किसी निकटवर्ती स्थान से, अच्छा हो कि न आया हो ताकि अधिकतम पारदर्शिता बनी रहे। उम्मीदवार के शोध प्रकाशन, आयोग द्वारा तैयार की गई सूची के जर्नलों में ही हों, इससे नाकारा लोगों की नियुक्ति अपने आप रुक जायेगी। कहना न होगा कि प्रोफेसरों का चयन आरक्षण आदि किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रहों से भी सर्वथा मुक्त होना चाहिये। प्राथमिक नियुक्ति के पश्चात चयनित व्यक्ति से विभाग की फैकल्टी के समक्ष एक सेमिनार भी अवश्य दिलवाया जाये। इस सेमिनार के मूल्यांकन के लिये वहाँ विषय के कम से कम दो अत्यंत प्रतिष्ठित प्रोफेसरों का उपस्थित होना आवश्यक होना चाहिये जिनका चयन जर्नलों की भांति ही आयोग द्वारा तैयार की गई एक सूची से किया जाय जिसमें देशभर के सेवानिवृत्त एवं कार्यरत केवल लब्धप्रतिष्ठ विशेषज्ञ ही सम्मिलित हों। इस पारदर्शी माध्यम से चयनित प्रोफेसर शिक्षा एवं शोध के स्तर को अपेक्षित ऊँचाइयों तक पहुँचाने में अवश्य ही समर्थ होगा, जिसकी वर्तमान में नितांत आवश्यकता है।

विश्वविद्यालयों में आचार्यों की नियुक्ति का सीधा संबंध राष्ट्र की प्रगति एवं उसकी वैचारिक सांस्कृतिक उन्नति से होता है। एक आकलन के अनुसार इस समय इन संस्थानों में लगभग छ: हजार पद रिक्त हैं। निश्चित रूप से यह स्वर्ण अवसर है जब उचित मानदंडों के आधार पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जा सकती है। अवश्य ही मानदंडों में किसी भी प्रकार की ढिलाई अक्षम्य अपराध के सदृश्य ही होगी। ❑

(पूर्व अध्यक्ष–रसायन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)

There is no doubt that the curricula and education those we programme should be compatible with education and curricula all over the world. But we have to create and make our Sanskriti education a reality, a thriving functional reality. Once our Sanskriti and Parampara are effectively taught to our future generation, the possibility to the three companies destroying our education shall be considerably less. Many of us are influenced by the three companies because of our ignorance of what we really are. In one word, the whole thing thrives on our un-knowledge of the reality with our own selves.

Educating the Educators

❑ Dr. TS Girishkumar

Education shall be a phe nomenon inevitable to any living society, and it only shall make proper sense to give maximum attention to the phenomena of education with top priority. Societies that ignore education pay heavily, and decay very soon. But then, it is always very important as to the kind and nature of education we provide to the future citizens of the society.

Education for Bharat

Every society is supposed to have its own distinct culture, values and a way of living, apart from some religion which must have undergone a process of acculturation of the given society. To educate the future generation also should mean to educate all these things apart from providing education on the basis of some universally thought of programme. This, each society has to do individually.

In present day Bharat, education has to be done with an extremely deft hand. On the one hand we are still reeling under the influence of more than one thousand years of alien rule, and on the other hand we were not given a chance to understand what we really are. The two worst evils of the world had their ways with Bharat, first the Moghuls and their brutal ways, and then the British and their destructive ways. The holocausts of the Jews are recorded on many places and the world will keep seeing those and remember. Moreover the holocaust also did not last that long; the most horrific part of it got over with the end of the second European war and the abrupt death of Hitler. But the holocausts of the Hindus went on for well above thousand years, and there are no records of them. No one ever knew them, no one will ever see them; and most unfortunately, most people do not know them, to remember them. But the reality is: holocaust of the Hindus was much more severe and intense than what many people could imagine.

Indeed, in spite of becoming free from a political rule, the cultural and educational set back this nation received is too strong for anyone to easily overcome quickly. We have had vestiges from both the rules, vestiges those still leave a longing to live in their imagined erstwhile days, style, and culture for some. Some of the insurgents could

trace their roots to the over glorified Moghul days, and some others, the again overglorified British days.

The English schools did have the McCauley effect in any case; albeit their bitter failures because of personalities like Shri Aurabindo and Swami Vivekananda. All text books were created by them with the sole objective of establishing the colonial master's mastery upon people of Bharat. Why not? The sole objective of their education policy was to create a band of Bharatiyas who accept the British as their masters. Unfortunately, this also include the first Prime minister of Bharat, a 'very' British person in his own thoughts, though no British would have accepted him as one among them!

As a result, we have an education programme with curricula which may be universal in the academic sense, but which is also traditionally and culturally alien. I suggested a universal pattern of academic education, as this is the case. All over the world, the education pattern should be more or less a common one, so that a person from one corner of the globe is likely to be equal another person from another corner of the globe in terms of information gathered and remembered. But, let us be very clear, that this is just one part of education, and let me call it as the academic part. There should also be another part to education, equally or more powerfully, which, I call as the cultural part. The latter, the cultural part, should naturally be distinct to each society. But I don't think that such subtle combination is being made effectively and consciously in many places, including our nation. To a large extent, the latter, cultural part may be effectively imparted in some nations who had not suffered larger subjugation, but how consciously this is done is a question one must think of.

Difficulties with Bharatiya education

On the one hand, the thousand years of alien rule had considerably devastated everything with us, including education. On the other hand, the 'Neo-Colonialists' who are Bharatiyas but with alien structure of mind set had been at the realm of running the matters of most things till date, which naturally include education.

There are three 'companies' among the alien structured minds. One, the European oriented structure, which we may call European 'Bhakts'. Second, the non-National Muslims who directly or indirectly believe in a Dar-Ul-Islam, and the third company, the communists. European Bhakts would laud everything European and look down upon anything non-European. Just think for yourselves about research papers published in Europe and in Bharat, and the treatment they get, irrespective of their merits. Nonetheless, the degrees of Bhakti may definitely vary from case to case, as some intense and some less intense. The Dar-Ul-Islam company are somewhat less rational and blind: naturally, they do not wish to accept anything else other than Islamic, but remember, Islamic as each understands creating all kinds of divisions among them. The third company, the communists are really not much different from the Dar-Ul-Islam company, communists are sometimes even more fundamentalists that the second company. Communists have this 'projected' internationalism from both Marx and Lenin and this makes their first postulate anti National to any Nation. In their theory, Nationalism is a threat to their communist international. This makes the communists against anything 'National' again, irrespective of their merits. All these three are equally strong and powerful in Bharat, and they all have an effective method of infiltrating into every establishment of the society, which primarily includes education. Roughly, this is the present situation in Bharat.

Sanskriti – Culture and Bharat

When it comes to Sanskriti, Bharat is extremely distinct from others. Other nations have their cultural moorings on languages sometimes, geographical specialities sometimes and sometimes it is also religion. Their culture evolved, or evolves from and through things like these. But the case of Bharat had ever been unique.

What begins in available knowledge of Bharatiya Parampara is the Vedopanishadic knowledge tradition. In my perspective, the Vedas and Upanishads are knowledge texts primarily, which gave rise to a knowledge tradition and I call it the Vedopanishadic knowledge tradition. The evolution of Bharatiya Sanskriti is posterior to this knowledge tradition, and Bharatiya Sanskriti evolves from the Vedopanishadic knowledge tradition. It is only after these two that the transcendental longing of any human consciousness comes into existence in Bharat, as Dharma. Thus, the knowledge tradition comes first, the Sanskriti comes second, and Dharma comes third. Further, the Vedic Dharma gave rise to multiple 'Dharmas' pertaining to multiple roles of individuals in social existence as, for example, Acharya Dharma, Putra Dharma and so on. This becomes Bharatiya 'Moral Philosophy' and we have Dharma Shastras and Dharma Nitis to these effect.

Normal academic education may be getting imparted, but how about Bharatiya Sanskriti and Parampara? To what extent our

curricula carry Sanskriti and Parampara? When these things are not effectively done, our education is bound to be far behind the requirement of the nation society. There are occasions when we see how miserable things with us are. One of my young colleagues had gone to Vienna to present a paper basically on the Kashmiri Hindu's problems. There were also others from Bharat. My young colleague tells me yesterday that she heard some Europeans say that 'Indians do not know how to write papers' after hearing some of our people. Some of our people had been using European categories and concepts as well as pattern, to do research, which becomes mere copying. This becomes jarring to those who do things originally, and in most cases by the time our copy-cats catch up with what they disgorge, they must have gone much ahead. Hence what is repeated by our copy-cats becomes their left over and that too in much primitive manner. Such things are indeed shameful to our Nation and Sanskriti, and my young college was saying, 'Nak Kat Gaya'.

What ought to be our education and curricula

There is no doubt that the curricula and education those we programme should be compatible with education and curricula all over the world. But we have to create and make our Sanskriti education a reality, a thriving functional reality. Once our Sanskriti and Parampara are effectively taught to our future generation, the possibility to the three companies destroying our education shall be considerably less. Many of us are influenced by the three companies because of our ignorance of what we really are. In one word, the whole thing thrives on our unknowledge of the reality with our own selves.

We must be looking for creating the possibility of such complete education. Curricula must be created so, text books must be made available so and most importantly, teachers must be created so.

Teaching the teachers

It is here that educating the educators or teaching the teachers becomes important. Actually, it is the teachers who create an aura as well as 'learning culture' with every institution. 'Somehow', JNU became negatively oriented and against the Sanskriti and Parampara of Bharat. This may be because of extreme bias from the communists who claim to be progressive, may be the closeness with former Soviet Union, may be the then European phenomena of orientation with positivistic social sciences, modernity, post-modernity, structure and post-structure theories etc. any one among these is sufficient to drive young minds to anarchy, and one can visualise the effect of the combo. Somehow, this goes on. During my student days in JNU, long before, things were so, and like a chain, it continues till date. Further,wherever the products of JNU are in teaching, the process repeats. Where they are more in number, this becomes intense. If we open our minds and look at various universities, various departments etc. where JNU products have a foothold we can see the same negativity misdirecting youth to anarchy. I have personally witnessed such things.

This makes the dire and serious need for creating meaningful teachers to our society. We require academically brilliant teachers undoubtedly, but what we need more is culturally and traditionally brilliant minds. The API score designed by UGC is only partial, it looks at only the academic side, and one should not be surprised if one comes across a 'great' researcher who is also a great anarchist. This makes educating the educators in high priority. The teachers, the educators must be highly culturally and traditionally literate apart from stable emotional literacy. Both emotional literacy and spiritual literacy shall be automatic once Cultural literacy is ensured.

Nonetheless, nothing is going to happen immediately. But dispersing such thoughts is hopeful. We can aspire and hope for a situation tomorrow, where meaningful teachers shall be creating meaningful citizens of this great and mighty nation, which is bound to become Viswa Guru in the future not very far. ❑

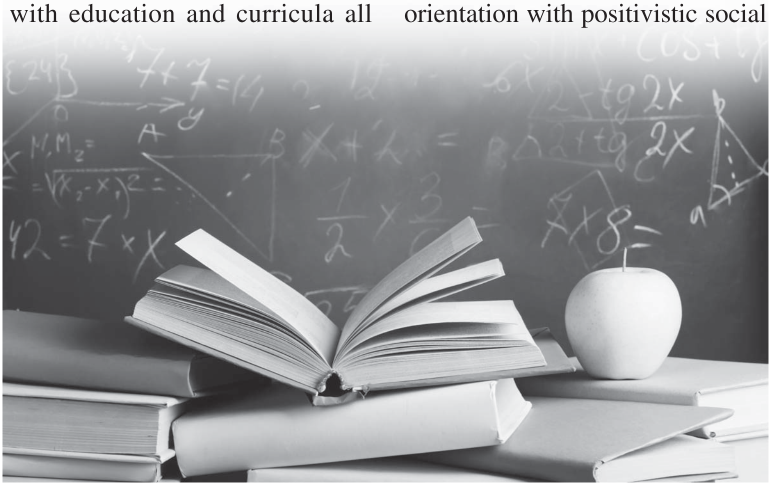

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

Selection and Training of Teachers

Selection of a teacher to serve the society for quite a long time is an important issue. One has to specify characteristics of that; subject knowledge is of course the important aspect along with experience but the other thing which should be given due importance is: thinking of a teacher or aspiring teacher should be that he should have love/ affection/ dedication for the nation. This can be adjudged by his approach towards the subject he is representing to make it more comfortable for persons working in the local vicinity or at national level. By inculcating pride for what their ancestors have done in that field. Language is one of the important aspects.

❑ **Dr. A. K. Gupta**

Education in our country never got its due importance. It remained as a powerful tool in the hands of the rulers. Be it during Mughal regime or English regime. Even in earlier times so called experts used it for their own benefits keeping it to pass on the heredity basis rather than equity and access basis as we talk today. Needless to say that level of education is judged by the level of teachers. More so span of a teacher's active life is more than what we expect from him or her to continue to update the knowledge acquired at the time of entry to the profession. For this reason it is training to a teacher which becomes important.

Role of education is the basic point which should be addressed. We all agree that in today's time need is focus on developing persons with knowledge and integrity, dedication and character building. Long term planning is important to keep our objectives as high targets to achieve, it should not be affected by change of regime at highest political level. Education is most important tool in the present time in human resource development, which decides course of life in time to come. Therefore selection of teachers and their training become crucial.

Efforts are being made by the Government depending upon the regime which decides manner in which the scheme is implemented. Content i.e. syllabi and process i.e. ways of communicating to the disciples becomes root cause to address. Teachers are considered to be Ambassadors for spreading education among general public hence their selection become very important. The first impression that goes in general in the minds of public is image of a teacher, Parents think about the teacher who is going to be master craftsman for their wards.

Regard and respect which a teacher can earn is non parallel to any profession that's why this profession is treated as noble one among others if considered at par with others. A pupil looks to a teacher as or equal to parents because it is the teacher only who is considered responsible for showing path to success or to the ultimate i.e. GOD. It is only after passing the formal course when a teacher gets respect from his or her students. This is just possible when a teacher acts in the manner so that it itself generates respect for the teacher. "Guru Govind dou khade kake lagoo payi, Balihari Guru aapki jo Govind diyo batay".

However a teacher is an employee paid for the job carried out in terms of some monetary gain. He is adjudged by the colleagues in the society by his/ her monetary level or physical status. Here lies the point i.e. competitive rivalry which may force to deviate a teacher from the right path. It is basically the point to sustain and

come out of the agony with flying colours. Status of a person is not only judged on the basis of financial status but also other factors e.g. Political status, Ease with one can do works, right or wrong may be a different issue.

Selection of a teacher to serve the society for quite a long time is an important issue. One has to specify characteristics of that; subject knowledge is of course the important aspect along with experience but the other thing which should be given due importance is: thinking of a teacher or aspiring teacher should be that he should have love/ affection/ dedication for the nation. This can be adjudged by his approach towards the subject he is representing to make it more comfortable for persons working in the local vicinity or at national level. By inculcating pride for what their ancestors have done in that field. Language is one of the important aspects, One should prefer a language for communication in which all persons related to him find it comfortable to communicate.

In selection of a teacher one should follow idealism although it may sound to be impracticable due to various pressures one has to face. The pressures so developed are not so easy to set aside. Leaving all important factors. Human weakness can be examined at this juncture. The objective should be very clear that by selecting a person he or she is given a life time chance to serve the society or at least his family members.

Qualification so decided or framed play an important role, same is the case with the process of selection. Number of experts and their role also become vital. Role of reporting officers and reviewing officer is also very crucial. Framing rules and regulations, and impact of these on the selection or promotion of teachers are also very important. Selection committee its formation, time given to an expert for participation his role in the process, facilities given to a members of selection committee are crucial points which should be given due importance. Certain things are left to the office which may not be capable or competent enough to decide about the critical issues e.g. Cutoff date, relaxation in qualification or experience, the time to consider an application etc.

Printing articles in the local languages should be preferred to others subject to availability of resources. Patenting is another field where one should focus and do the needful. Delivering speeches in local language should be given wieghtage over others. Text books etc i.e. all reading materials should be preferred in a language comfortable to all concerned. But technology should not create any hindrance in making advances towards the right goal.

Adaptability is one more important aspect which should be given due weightage. Span of a teachers active life where he or she is expected to contribute to society is quiet long. One can expect change in technology more rapidly. Thus continuous upgradation of skills is very crucial. Hence here lies the solution in terms of training. May be in field which a teacher belongs to or the method for imparting the knowledge or simply advancement in the technology. This can be fulfilled by continuously upgrading the domain of one's knowledge.

There are constraints also as one advances in age or say with passage of time role of the person is changed in different spheres to which one belongs e.g. official, personal, family, or social, political or simply monetary requirement. But here again comes points of thinking about the priorities. That's where one is judged his concern about the society or the nation to which he/ she belongs to.

Needless to say that Education is an important field to build the future or destroy it for a nation. It not only decides course or fate of a nation but also gives some indication about future economy of the country. The basic difference between a good citizen and a terrorist is of direction of Education which can make all the difference. The great difference also lies more on the shoulders of our policy makers or rules abiding authority or simply the politicians who together decides the course of the whole group.

If a political leader finds it better to appease a group for short term gains then wider interest of the nation building cannot be thought of in right direction. For centuries together we have fought for harmony among all occupying the piece of land. So is the need of the present time. One should be given equal opportunity regardless of financial status, community to one belong to, gender or any other point. Same is the case for equity and access, these all points should be given due weighatge to move the nation in right direction so as to compete at international level.

"If, while being a student of the past, a man who also understands the new things which surround him, he may be used as a teacher" Confucius. Complete harmony is expected between a teacher and taught. Physical presence of a teacher is not necessary, The mode may be different in different streams of education systems, but complete understanding or harmony is vital. ❑

(Professor, Structural Engineering Department, J.N.V. University, Jodhpur)

दीनदयाल जी का एकात्म अर्थचिन्तन

❑ डॉ. बजरंगलाल गुप्त

दीनदयाल जी वर्तमान तकनीकी एवं अकादमिक शब्दावली के संकीर्ण-सीमित अर्थों में अर्थशास्त्री तो नहीं थे, पर वे सचमुच अर्थवेत्ता राष्ट्रोत्थान एवं समाज की सर्वांगीण प्रगति के आकांक्षी कर्मरत दृष्टा थे। उन्होंने आर्थिक परिदृश्य, सामाजिक ,आर्थिक समस्याओं एवं उनके समाधान के बारे में जो विचार प्रकट किये, उसे अर्थचिंतन कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

मूलभूत मान्यताएं

ऐसा लगता है कि दीनदयाल जी का सम्पूर्ण अर्थचिंतन दो मूलभूत मान्यताओं पर आधारित था। एक, वे समाज व संसार के विभिन्न अवयवों-घटकों को अलग-थलग, पूर्णतया असम्बद्ध इकाइयों के रूप में स्वीकार नहीं करते थे। वे तो व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि एवं परमेष्ठी के बीच संबंधों की अखंड मंडलाकार रचना के आधार पर विभिन्न इकाइयों के बीच सावयवी, परस्परपूरकता, परस्परानुकूलता, एकात्मता एवं संवेदनशीलता के सम्बन्ध मानते हैं। इसी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था कि ‘भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण जीवन का, सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है।’ इस प्रकार वे टुकड़ों-टुकड़ों में खंडित विचार प्रक्रिया को ठीक नहीं मानते। दूसरे शब्दों में दीनदयाल जी समग्र-समन्वित एकात्म विश्वदृष्टि की मान्यता के आधार पर ही अपनी चिन्तन प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं ।

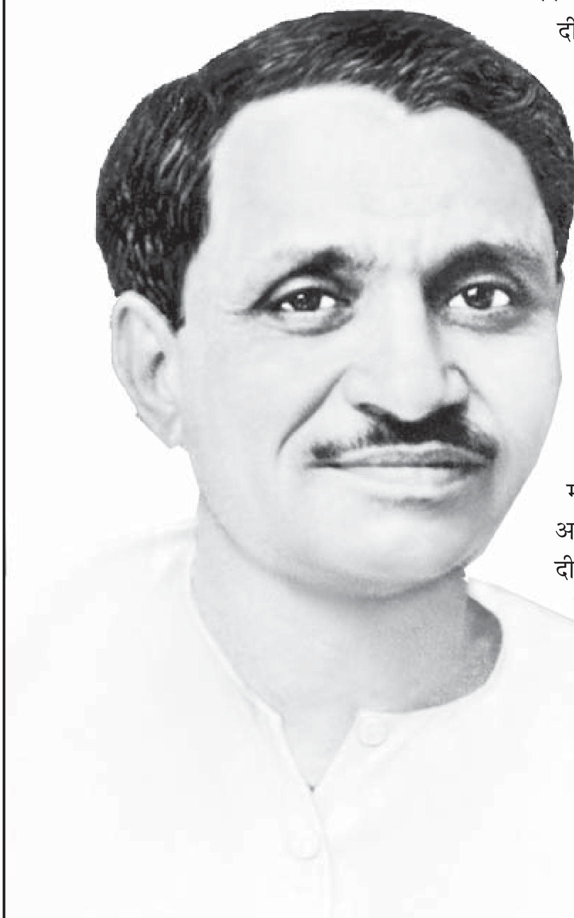

दीनदयाल जी की दूसरी महत्त्वपूर्ण मान्यता व्यक्ति के सम्बन्ध में है। उनके अनुसार ‘पूँजीवादी अर्थशास्त्र मनुष्य को एक अर्थलोलुप प्राणी मानकर चलता है । उसके सभी निर्णय आर्थिक दृष्टिकोण से होते हैं । ...’ वह अर्थोत्पादन की प्रेरणा से ही काम करता है ।‘ दूसरी ओर मार्क्स और साम्यवादी व्यवस्था ने मनुष्य को मात्र रोटीमय बना दिया । इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्र ‘आर्थिक मनुष्य’ (Economic Man) की अवधारणा मानकर चलता है । दीनदयाल जी के अनुसार इस आर्थिक चिंतन और उस पर आधारित अर्थव्यवस्था का यह परिणाम हुआ कि हाड़-मांस का वास्तविक मानव हमारी दृष्टि से ओझल ही हो गया है। इसलिए उन्होंने कहा कि, मनुष्य मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर इन चारों का समुच्चय है।

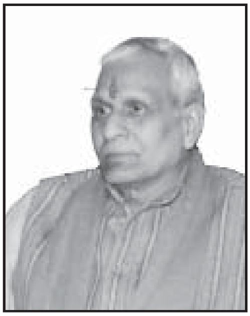

देश के प्रत्येक बालक-बालिका को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा देना समाज का दायित्त्व है। फीस लेकर शिक्षा देना उन्हें मान्य नहीं, अतः शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए। इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसा नहीं लेते बल्कि उस काम में पूँजी लगाते हैं, उसी प्रकार शिक्षा भी एक प्रकार का विनियोजन ही है। इसी प्रकार चिकित्सा भी निःशुल्क होनी चाहिए। शिक्षित एवं स्वस्थ व्यक्ति ही समाज के लिए अपनी पूर्ण क्षमता से अधिकतम योगदान दे सकता है। आज प्रश्न यह है कि दीनदयाल जी के इन विचारों को कैसे एवं कितनी मात्रा में व्यवहार में लागू किया जा सकता है। इस दिशा में पूरी गंभीरता से क्रियान्वयन की व्यापक योजना बननी चाहिए।

हम उसको टुकड़ों में बाँटकर विचार नहीं करते । व्यक्ति के बारे में भी हमने एकात्म एवं संकलित विचार किया है। इस प्रकार समग्र-एकात्म विश्वदृष्टि एवं व्यक्ति की एकात्म-संकलित अवधारणा, इन दो मान्यताओं पर आधारित है दीनदयाल जी का अर्थचिंतन और इसलिए इसे एकात्म अर्थचिंतन कहा जा सकता है ।

विकास का समग्र चिंतन

दीनदयाल जी कहा करते थे कि आज का पश्चिम-प्रेरित अर्थशास्त्र अर्थ-काम केन्द्रित अर्थचिंतन है। यह अधिकाधिक धनोत्पादन और अधिकाधिक उपभोग के एक वर्तुल चक्र में ही घूमता रहता है, अत: यह अधूरा एवं भोगवादी चिंतन है। उनका दृढ़ मत था कि जीवन के विभिन्न आदर्शों तथा देश-काल की विभिन्न परिस्थितियों के कारण हमारे आर्थिक विकास का मार्ग पश्चिम से भिन्न होना चाहिए। हम मार्शल और मार्क्स से बँधकर विचार नहीं कर सकते। हमें विकास एवं अर्थतन्त्र के एक ऐसे प्रारूप पर काम करना होगा जिसमें मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि, व आत्मा की आवश्यकता की पूर्ति और उसके सर्वांगीण विकास का अवसर मिल सके। इस दृष्टि से हमारे मनीषियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में चतुर्विध पुरुषार्थ की कल्पना रखी है। हमें इस संकल्पना की आज की आवश्यकता एवं सन्दर्भ के अनुसार व्याख्या एवं क्रियान्वयन करना होगा। इसे थोड़ा विस्तार से समझाते हुए दीनदयाल जी ने कहा था कि 'अर्थ' के अंतर्गत आज की परिभाषा के अनुसार राजनीति और अर्थनीति का समावेश होता है। 'काम' का सम्बन्ध मानव की विभिन्न कामनाओं की पूर्ति व तृप्ति से है। 'धर्म' में उन सभी नियमों, व्यवस्थाओं, आचरण संहिताओं तथा मूलभूत सिद्धांतों का अंतर्भाव होता है जिनसे अर्थ और काम की सिद्धि हो। इस प्रकार धर्म आधारभूत पुरुषार्थ है, किन्तु फिर भी तीनों अन्योन्याश्रित तथा परस्पर पूरक व परस्पर पोषक है। इतना तो सब मानने लगे हैं कि व्यापार-व्यवसाय अथवा धनार्जन के किसी भी क्रियाकलाप को सुचारू रूप से चलाने के लिए ईमानदारी, संयम, सत्य आदि धर्म के गुणों का पालन लाभदायक रहता है। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए दीनदयाल जी कहते हैं कि, अमेरिका वालों की दृष्टि में, 'ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ व्यावसायिक नीति है।' (Honesty is the best business policy)। यूरोप वालों के अनुसार 'ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ नीति है' (Honesty is the best policy) किन्तु भारत की परम्परा एक कदम आगे बढ़कर कहती है कि, 'ईमानदारी नीति नहीं अपितु सिद्धांत है। (Honesty is not a policy but a priniciple)। यहीं भारत और संसार के अन्य देशों के चिंतन में अंतर आता है। हमने धर्म को उपयोगितावादी दृष्टिकोण के अनुसार धन कमाने के लिए मात्र साधन नहीं माना है, अपितु हमारे लिए वह एक आस्था व विश्वास है और हर परिस्थिति में अपनाने लायक आचरण-शैली है। मोक्ष को हमने परम पुरुषार्थ माना है, तो भी अकेले उसके सेवन से मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। वास्तव में तो हमने इन चारों पुरुषार्थों का भी संकलित विचार किया है। शेष तीन पुरुषार्थों को लोकसंग्रह के विचार से, निष्काम भाव से करने वाला व्यक्ति कर्मबंधन से छूटकर मोक्ष का अधिकारी होता है। इसी बात को इस रूप में कहा जा सकता है कि अर्थार्जन के समस्त क्रियाकलाप और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपभोग के कार्य धर्म की मर्यादा के अनुसार इस प्रकार चलाये जाने चाहिए जिससे कि मनुष्य मोक्ष की दिशा में अग्रसर हो सके। इस प्रकार दीनदयाल जी के विचारों के अनुसार हमें एक ऐसी अर्थरचना एवं अर्थव्यवस्था को विकसित करना होगा जिसमें धर्म और अर्थ, सदाचार और समृद्धि दोनों साथ-साथ चल सकें ।

न्यूनतम आवश्यकताएँ

अधिक व्यावहारिक धरातल पर उतरते हुए दीनदयाल जी निर्देशित करते हैं कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की गारण्टी एवं व्यवस्था अवश्य रहनी चाहिए। न्यूनतम आवश्यकताओं में वे रोटी (संतुलित व पौष्टिक आहार), कपड़ा (ऋतु के अनुसार पर्याप्त मात्रा में), मकान (पीने का पानी एवं सेनिटेशन की सुविधाओं सहित) शिक्षा, स्वास्थ्य (समुचित चिकित्सा सुविधाओं समेत) एवं सुरक्षा को सम्मिलित करते है। शिक्षा के सम्बन्ध में दीनदयाल जी का मत था कि वह संस्कारप्रद तथा देश व समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। उनके अनुसार देश के प्रत्येक बालक-बालिका को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा देना समाज का दायित्त्व है। फीस लेकर शिक्षा देना उन्हें मान्य नहीं, अत: शिक्षा नि:शुल्क होनी चाहिए। इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसा नहीं लेते बल्कि उस काम में पूँजी लगाते हैं, उसी प्रकार शिक्षा भी एक प्रकार का विनियोजन ही है। इसी प्रकार चिकित्सा भी नि:शुल्क होनी चाहिए। शिक्षित एवं स्वस्थ व्यक्ति ही समाज के लिए अपनी पूर्ण क्षमता से अधिकतम योगदान दे सकता है। आज प्रश्न यह है कि दीनदयाल जी के इन विचारों को कैसे एवं कितनी मात्रा में व्यवहार में लागू किया जा सकता है। इस दिशा में पूरी गंभीरता से क्रियान्वयन की व्यापक योजना बननी चाहिए।

सबको काम एवं रोज़गार

अब प्रश्न यह है कि इन न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक साधन-सामग्री तथा वस्तुएं व सेवाएँ कहाँ से और कैसे मिलेगी? यह तभी संभव है जब देश के व्यक्ति पुरुषार्थ करे और सब सक्षम एवं स्वस्थ व्यक्ति को काम (रोजगार) मिले। दीनदयाल जी कहते हैं कि मानव को पेट

और हाथ दोनों मिले हुए हैं। यदि हाथों को काम न मिले और पेट को खाना मिलता रहे तो भी मनुष्य सुखी नहीं रहेगा। अत: 'प्रत्येक को काम' अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए। अर्थव्यवस्था में सब प्रकार की बेरोजगारी, अल्प बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी समाप्त होकर देश के प्रत्येक स्वस्थ व क्षमतावान व्यक्ति को रोजगार के अवसर उपलब्ध होने चहिए। दीनदयाल जी ने स्पष्ट रूप से कहा था कि 'प्रत्येक को वोट जैसे राजनितिक प्रजातंत्र का निकष है वैसे ही प्रत्येक को काम' यह आर्थिक प्राजातंत्र का मापदंड है। इस संबंध में वे आगे कहते है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा काम मिलना चहिए जिससे उसकी ठीक से जीविकोपार्जन हो सके, उसे अपना काम चुनने की स्वतंत्रता हो तथा उसे अपने काम के बदले न्यायोचित पारिश्रमिक मिले। इसके लिए रोजगार केन्द्रित उत्पादन, निवेश एवं विकास रणनीति बननी चाहिए। इस प्रकार दीनदयाल जी का जोर पूर्ण रोजगार अथवा 'हर हाथ को काम देने वाली अर्थव्यवस्था बनाने पर था।

उत्पादन तंत्र एवं दिशा

देश व समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति सतत् विकास के लिए वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन होते रहना चाहिए। उत्पादन की पद्धति, प्रक्रिया, दृष्टि व दिशा के सम्बन्ध में दीनदयाल जी ने जो महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए है, उनको जान लेना उपयोगी रहेगा।

दीनदयाल जी के अनुसार पश्चिम का अर्थशास्त्र उपभोग की सतत् वर्धमान आकांक्षा व लालसा को पूरा करने के लिए अमर्यादित उत्पादन वृद्धि पर जोर देता है। इससे भी आगे बढ़कर पहले तरह-तरह की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और फिर उसे खपाने के लिए इच्छाएं पैदा करना और बाजार तलाशने का काम किया जाता है। इसके लिए तमाम उत्तेजक, माँग परिवर्तक एवं प्रतियोगी - भ्रमात्मक (manipulative and competitive) विज्ञापनों, आकर्षक पैकेजिंग तथा बिक्री-संवर्धन के विभिन्न तौर-तरीकों का प्रयोग किया जाता है। इस सम्बन्ध में दीनदयाल जी ने एक मजेदार उदाहरण दिया है। अमेरिका में चाकू की बिक्री बढाने के लिए चाकू के बेंटे का रंग आलू के छिलके जैसा रखकर छिलकों के साथ चाकू को फेंक देने तक का प्रयोग किया गया। इस प्रकार अब उपभोग के लिए उत्पादन से भी आगे बढ़कर उत्पादन के लिए उपभोग का अर्थशास्त्र चल पड़ा है, यह विनाशोन्मुख है। पुराना फेंको और नया खरीदो। नया खरीदने की चाह उपभोक्ता में पैदा करना; माँग पूरी करना नहीं बल्कि माँग पैदा करना यही आज अर्थव्यवस्था का लक्ष्य हो गया है। दीनदयाल जी के अनुसार यह घातक, विनाशोन्मुख एवं संसाधनों की फिजूलखर्ची करने वाला अर्थशास्त्र एवं अर्थव्यवस्था है। इसे बदलकर आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति के लिए संसाधनों की मितव्ययी उत्पादन-प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए।

(II) हमें उत्पादन में वृद्धि तो अवश्य करना है, पर ऐसा करते समय प्रकृति या प्राकृतिक संसाधनों की मर्यादा को न भूले। इसका अर्थ है कि हमें प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध प्रयोग कर प्रकृति के साथ उच्छृंखलता करने वाली उत्पादन पद्धति व तकनोलोजी से बचना होगा तथा पुनरुत्पादनीय ऊर्जा स्त्रोतों के प्रयोग एवं पर्यावरण पोषक तकनोलोजी पर अधिक ध्यान देना होगा। प्रकृति से हम उतना तथा इस प्रकार लें कि वह उस कमी को स्वयं पुन: पूरित कर लें।

(III) दीनदयाल जी का आग्रह स्वदेशी, स्वावलंबी एवं विकेन्द्रित अर्थतन्त्र एवं उत्पादन तन्त्र अपनाने पर था। वे विचार, व्यवस्थापन, पूंजी, उत्पादन-तन्त्र, प्रगति की दिशा, विकास प्रतिमान एवं उपभोगशैली के बारे में अत्यधिक विदेशी निर्भरता के विरुद्ध थे। वे स्वदेशी को प्रतिगामी एवं कालबाह्य संकल्पना मानने वालों के विचारों से कतई सहमत नहीं थे। उनका स्पष्ट मत था कि हमें अपना देश, अपनी परिस्थितियों के अनुकूल ही समाधान के मार्ग तलाशने होंगे। इस सम्बन्ध में उन्होंने संस्कृत के इस सुभाषित का उल्लेख किया है 'यद्देशस्य यो जन्तुः तद्देशस्य तस्यौषधम्' (जिस देश में जो पैदा होती है, वहाँ उस देश की औषधि है)। हमें इस प्रकार के अर्थतन्त्र एवं उत्पादन-तन्त्र की रचना करनी होगी जिसमें स्थानीय संसाधनों, स्थानीय कौशल और स्थानीय श्रम के आधार पर स्थानीय आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति की जा सके। हमें विदेशी पूँजी, विदेशी तकनोलोजी एवं विदेशी माल कम से कम और बहुत अनिवार्य होने पर ही प्रयोग करना चाहिए। अपना विकास अपने बलबूते करने की दिशा में ही आगे बढ़ना चाहिए तभी हम स्वदेशी-स्वावलंबी अर्थतन्त्र खड़ा कर पायेंगे। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या हम अपनी पुरानी तकनीक-तकनोलोजी, उत्पादन-पद्धति से ही चिपके रहकर विदेशी पूँजी एवं विदेशी तकनोलोजी को पूर्णतया नकार दें अथवा अन्धानुकरण कर पूर्णतया स्वीकार करलें? इस सम्बन्ध में दीनदयाल जी ने एक व्यवहारिक मार्गदर्शन दिया है। उनके अनुसार जो अपना है, (अपनी पद्धति, कार्यशैली, तकनीक-तकनोलोजी, जीवनशैली आदि) उसे युगानुकूल बनाकर और जो पराया विदेशी है (विदेशी पद्धति, तकनीक-तकनोलोजी आदि) उसे देशानुकूल बनाकर अपनाना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों एवं व्यापार की दृष्टि से भी हम बंद अर्थव्यवस्था बनकर नहीं रह सकते और न ही हम अमीर देशों एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के परावलम्बी बनकर उन्हें शोषण का अवसर दे सकते हैं। इसके लिए हमें समान धरातल पर विश्व के विभिन्न देशों के साथ परस्परावलम्बी आर्थिक सम्बन्ध बनाने होंगे। दीनदयाल जी बड़ी-

बड़ी उत्पादन इकाइयों एवं बड़े-बड़े उद्योगों के सहारे ही अर्थव्यवस्था चलाने के पक्षधर नहीं थे। इससे देश में केन्द्रीयकरण पनपता है जो विषमता और बेरोजगारी को बढाता है। अत: उनके अनुसार हमें व्यक्ति व परिवार आधारित, लघुयंत्राधिष्ठित आर्थिक विकेंद्रीकरण की प्रणाली विकसित करने पर जोर देना चाहिए और श्रम प्रधान विकेन्द्रित ग्रामोद्योगों को सुदृढ़ करना चाहिए।

हमें ऐसी उद्योग व्यवस्था कायम करनी है जो कृषि के साथ सुसम्बद्ध हो सके तथा कृषि से भार कम कर सके तो उसके लिए बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे उद्योगों को प्राथमिकता देनी होगी। थोड़े लोगों तथा सरल औजारों के साथ छोटी-छोटी इकाइयाँ ही आज की परिस्थिति में हमारे लिए सर्वोत्तम है।

कृषि एवं उद्योग

दीनदयाल जी ने भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ के कृषि एवं उद्योग क्षेत्र के बारे में समय समय पर बहुत विस्तार से (विशेषकर भारतीय अर्थनीति एवं विकास को एक दिशा में) अपने विचार प्रकट किए हैं। वे कृषि क्षेत्र में प्रति एकड़ एवं प्रति व्यक्ति निम्न उत्पादकता स्तर से बहुत चिंतित थे और दोनों दृष्टियों से उत्पादकता स्तर में वृद्धि करने के बारे में उन्होंने अनेक सुझाव दिए थे। उनका मानना था कि कृषि विकास की दृष्टि से हमे प्राविधिक (technical) एवं संस्थागत (institutional) दोनों प्रकार के कार्यक्रम साथ-साथ चलाने होंगे, प्राविधिक दृष्टि से हमें आधुनिक कृषि तकनोलोजी का समुचित मूल्यांकन करते हुए भारतीय परस्थितियों के अनुरूप कृषि पद्धिति में सुधार करना होगा। इस दृष्टि से भूमि की उर्वरता को बनाएँ रखने वाले खाद व बीज, फसल की अदला-बदली, बुवाई व कटाई के तरीकों, कृषि यंत्रों के प्रयोग, भूक्षरण को रोकने जैसी कई बातो पर विशेष ध्यान देना होगा। दीनदयाल जी ने इस बात को भली भांति समझ लिया था कि खेती की पैदावार में वृद्धि करने के लिए सिंचाई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इनपुट है। हमारे देश की खेती अधिकांशतया मानसून की कृपा पर निर्भर करती है जो अनियमित हैं और सब जगह और सब समय समान नहीं रहती। अत: उन्होंने 'अदेवमातृका कृषि' की संकल्पना प्रस्तुत की जिसका अर्थ है कि हमें कृषि को मानसून या इंद्र देव की कृपा पर ही नहीं छोड़ना चाहिए। इस दृष्टि से वे पर्याप्त मात्रा में छोटी सिंचाई योजनाओं, कुओं, तालाबों, बावडियों एवं जलबन्ध (चैक डैम्स) के विस्तार पर अधिक बल देने के पक्षधर थे। उनकी मंशा थी कि हम सिंचाई कि ऐसी व्यापक एवं पक्की व्यवस्था कर दें जिससे कि हर खेत को पानी पहुँचाया जा सके। संस्थागत कार्यो कि दृष्टि से भूस्वामित्व, भूमि के उपविभाजन एवं अपखंडन को रोक कर आर्थिक जोत बनाएँ रखने, सहकारी खेती, विपणन, भण्डारण, साख सुविधाओं, मूल्य निर्धारण की दृष्टि से भी समुचित व्यवस्थाएँ करनी होगी। दीनदयाल जी कृषि के साथ साथ औद्योगिक विकास के बारे में भी पूर्ण सचेत थे। उनका मानना था कि बढती जनसंख्या का खेती पर से भार घटाने, कृषि में उत्पन्न कच्चे माल का उपयोग करने और कृषि को आवश्यक साधन सामग्री, यंत्र-औजार प्रदान करने, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने, देश की निर्यात क्षमता बढ़ाने, स्वावलंबन आदि कई दृष्टियों से औद्योगीकरण अत्यंत आवश्यक है। किन्तु वे कुछ विशेष क्षेत्रों एवं विशेष वस्तुओं के उत्पादन को छोड़कर, शेष सबके लिए बड़े उद्योगों के स्थान पर श्रम प्रधान छोटे उद्योगों के अधिक पक्षधर थे। उनके अनुसार, 'हमारे लिए उद्योगों की वही प्रणाली उपयुक्त है जिसमें हम कुटुम्ब के आधार पर काम को जीवन का अंग बना कर चल सके। इसमें मालिक-मजदूर, उत्पादक-उपभोक्ता, आदि के सम्बन्धों का ठीक-ठीक निर्धारण हो सकेगा। हम इन संबंधों का नियमन पश्चिम के मूल्यों से नहीं कर सकते। देश के व्यापक औद्योगीकरण में मानव संबंधों का निर्माण हमें अपने ही मूल्यों पर करना होगा'। उद्योगों के क्षेत्र में भी दीनदयाल जी ने 'अपरमात्रिक उद्योग नीति' की संकल्पना दी थी, इसका तात्पर्य स्वावलंबन से कुछ अधिक उत्पादन करने वाली उद्योग नीति से है ताकि शेष बचे अतिरेक को निर्यात करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इस प्रकार दीनदयाल जी देश में ऐसा औद्योगिक ढाँचा बनाना चाहते थे जिसके द्वारा आवश्यक वस्तुओं के मामले में देश स्वावलंबी बन सकें और अंतर-राष्ट्रीय गुणवता स्तर की वस्तुओं का निर्यात करके देश के लिए आवश्यक वस्तुओं का आयात करने की क्षमता निर्माण कर सके। प्रो. विश्वेश्वरैय्या को उद्धृत करते हुए दीनदयाल जी ने कहा था कि औद्योगिक नीति का विचार करते समय हमें सात बातों पर ध्यान देना चाहिए -

(i) मनुष्य (men)
(ii) माल (material)
(iii) मुद्रा (money)
(iv) मशीनरी (machinery)
(v) प्रबंध (management)
(vi) शक्ति (motive power) और
(vii) बाजार (market)

वास्तव में ये सातों परस्पर निर्भर एवं परस्परपूरक है। अत: इनके बीच योग्य संतुलन बनाकर ही हम समुचित औद्योगिक विकास कर सकते है। उनके अनुसार, हमे मनुष्य के उत्पादन स्वातंर्त्र्य पर आघात करने वाली पूंजीवाद की तकनीकी प्रक्रिया को आँख बंद करके स्वीकार नहीं करना चाहिए। हमें शिल्पकार एवं स्वनियोजित क्षेत्र को नष्ट करने वाला औद्योगीकरण भी नहीं चाहिए। उनके औद्योगीकरण के सिद्धांत को संक्षेप में निम्नलिखित सूत्र से बताया जा सकता है-

$$ज \times क \times य = इ$$

यहाँ, ज = जन, क = कर्म की

व्यवस्था, य = यंत्र, इ = समाज का इच्छित संकल्प आधुनिक औद्योगीकरण में 'य' (यंत्र) सबको नियंत्रित करता है। हमें इसके स्थान पर ऐसी अर्थव्यवस्था निर्माण करना है जो 'ज' (जन) और 'इ' (समाज का इच्छित संकल्प) के नियंत्रण में 'क' (कर्म की व्यवस्था) और 'य' (यंत्र) का नियोजन करे। इसी क्रम में दीनदयाल जी ने उत्पादन में मशीन के प्रयोग एवं चयन के बारे में भी अपने विचार प्रकट किए है। वे कहते हैं ''प्रौद्योगिकी का सम्बन्ध मशीन से हैं। हमे उनका चुनाव विचारपूर्वक करना पड़ेगा। हमे अपने देश में उपलब्ध उत्पादन उपकरणों के साथ मेल खाने वाली मशीन का प्रयोग करे। श्रम और शक्ति, पूँजी और प्रबंध, माल और माँग ये सब मशीन के स्वरुप को निश्चित करने वाले होने चाहिए। ...... किन्तु आज कुछ ऐसा हो रहा है कि हम मशीन को ध्रुव मान कर उसके अनुसार शेष सबको बदलने का विचार करते है।। मशीन के लिए मनुष्य को बदलने पर विवश कर रहे है। सम्पूर्ण उत्पादन प्रणाली एक मशीन पर केन्द्रित हो गयी हैं। .... आज देश में जहाँ एक ओर मशीन के श्रद्धालु भक्त हैं तो दूसरी ओर कट्टर दुश्मन भी मौजूद है। .... वास्तव में मशीन न तो मनुष्य का शत्रु है न मित्र। वे एक साधन है तथा उसकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं, 'मशीन देशकाल परिस्थिति निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष है। विज्ञान की आधुनिकतम प्रगति की वह उपज है, किन्तु प्रतिनिधि नहीं। ज्ञान किसी देश-विदेश की बपौती नहीं, किन्तु उसका प्रयोग प्रत्येक देश अपनी परस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार करता है। हमारी मशीन हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल ही चाहिए। वह हमारे सांस्कृतिक एवं राजनितिक जीवन मूल्यों की पोषक नहीं तो कम से कम अविरोधी अवश्य होनी चाहिए। मशीन और प्रौद्योगिकी के संबंध में इससे अधिक सटीक और व्यावहारिक चिंतन शायद ही कोई और हो सकता है।

दीनदयाल जी के अनुसार आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण के लिए पूँजी का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्व का है। पूँजी व बचत जुटाने के लिए साधारणतया दो मार्ग बताए जाते हैं। राष्ट्रीय आय के असमान वितरण द्वारा बचत क्षमता में वृद्धि करना; और विदेशों से पूँजी का आयात करना। पर ये दोनों ही ठीक नहीं हैं। देश के सामान्य व्यक्ति की बचत क्षमता बढ़ाने के लिए उसकी आय में वृद्धि और उपभोग का संयम ही उचित मार्ग है। दीनदयाल जी का यह भी स्पष्ट मत था कि उद्योगों में पूँजीपति एवं बड़ी कंपनियों में शेयर होल्डर्स के साथ-साथ मजदूरों का भी स्वामित्व स्वीकार किया जाए और उन्हें लाभ एवं प्रबंध में भागीदार बनाया जायें। ऐसा करने पर हड़ताल-तालाबंदी की समस्या समाप्त होकर औद्योगिक शान्ति स्थापित हो सकेगी, श्रमिक अपनी पूरी कार्य क्षमता से मन लगा कर काम करेंगे और वितरण की समानता की दिशा में भी आगे बढ़ सकेंगे।

अर्थदृष्टि एवं अर्थसंस्कृति

अर्थ एवं अर्थाजन के संबंध में क्या दृष्टिकोण रहे ? इस बारे में भी दीनदयाल जी ने बहुत गहराई से चिंतन किया था। उनका मानना है कि मनुष्य एवं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में धन का होना आवश्यक है । अनुभव यह है कि कई बार अर्थ के अभाव में व्यक्ति के मन में कुंठा, निराशा एवं आक्रोश पैदा हो जाता है और वह अनाचार, अत्याचार, चोरी- डकैती, लूट-खसौट एवं अन्य अनेक प्रकार के आर्थिक अपराधो में संग्लन हो जाता है। इसीलिए तो हमारे यहाँ कहा गया है कि

बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ,
क्षीणाः नराः निष्करुणाः भवन्ति।

(भूखा व्यक्ति कौनसा पाप नहीं करता; भूख से पीड़ित कमज़ोर व्यक्ति निर्दयी हो जाते हैं)। इस प्रकार से अर्थ के अभाव में भी धर्म (अर्थात समाज हित के भले काम) टिक नहीं पाता। अर्थ के अभाव के समान ही अर्थ का प्रभाव भी समाज के लिए घातक हो सकता है। अर्थ के प्रभाव से आशय है :

(i) अर्थ के कारण स्वयं अर्थ में अथवा उसके द्वारा प्राप्त पदार्थों एवं भोग विलास में आसक्ति उत्पन्न हो जाना - केवल पैसे कमाने या संचय करने की धुन लग जाना।

(ii) अर्थ का ही समाज के प्रत्येक व्यवहार और व्यक्ति की प्रतिष्ठा का मानदंड बन जाना 'सर्वे गुणाः काँचनमाश्रयन्ति' की उक्ति के आधार पर ही दैनिक जीवन में व्यवहार प्रारंभ हो जाना। इससे लोगों के जीवन में धनपरायणता आ जाती है, परिणामस्वरुप प्रत्येक कार्य के लिए धन की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस होने लगती हैं। अंततोगत्वा धन का प्रभाव प्रत्येक के जीवन में अर्थ का अभाव भी उत्पन कर देता है।

अतः अर्थ के अभाव एवं अर्थ के प्रभाव दोनों से बचना चाहिए। इसके लिए दीनदयाल जी ने अर्थायाम नाम से एक नई संकल्पना दी है। उनके अनुसार, 'समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को अर्थायाम कहा गया है'। एक अन्य दृष्टि से अर्थ के उत्पादन, वितरण व भोग में संतुलन को भी अर्थायाम कहा जा सकता है। जिस प्रकार से व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए प्राणायाम का महत्त्व है, उसी प्रकार अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के लिए अर्थायाम का महत्त्व है। इसके लिए शिक्षा, संस्कार, दैवीसम्पदायुक्त व्यक्तियों का निर्माण तथा अर्थव्यवस्था का उपयुक्त ढाँचा सभी का सहारा लेना जरुरी होता है। दीनदयाल जी का मानना था कि अर्थव्यवस्था का निर्माण एवं संचालन मानवीय उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। पश्चिमी अर्थव्यवस्था में

(पूँजीवादी एवं समाजवादी दोनों में) मौद्रिक मूल्य एवं धनार्जन को ही अत्यंत महत्त्व का स्थान प्राप्त है इसीलिए उनका नीतिगत नारा है, 'कमाने वाला खायेगा' दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं की दृष्टि तो समान है, अंतर केवल राष्ट्रीय आय वितरण में प्राप्त हिस्से को लेकर है साम्यवादी अर्थव्यवस्था के अनुसार उत्पादन में मुख्य भूमिका श्रम की होती है, अत: देश के कुल उत्पादन व उपभोग में मुख्य हिस्सा भी श्रमिकों को ही मिलना चाहिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुख्य भूमिका पूँजी व उद्यम की होती है, अत: देश के कुल उत्पादन व उपभोग में मुख्य हिस्सा पूँजीपति व उद्यमी को मिलना चाहिए। किन्तु ये दोनों विचार आधे-अधूरे एवं अमानवीय है। अत: भारतीय चिंतन ने मानवीय दृष्टिकोण से अपने लिए जो दिशा-सूत्र (नारे) निश्चित किए हैं, वे हैं- 'कमाने वाला खिलायेगा' तथा 'जो जन्मा सो खायेगा'। इसका अर्थ है कि कमाने वाला परिवार में बच्चे, बूढ़े, रोगी, अपाहिज, अतिथि आदि सब के भरण-पोषण की चिंता करेगा और देश में अभावग्रस्त, निर्धन-निर्बल व्यक्ति के निर्वाह का भी समाज का दायित्त्व होगा, इसी में से आगे चलकर 'अन्त्योदय' के लिए आर्थिक नीति बनाने की दिशा सामने आयी और अधिक विचार करने पर यह भी ध्यान आया कि यदि कमाने वाला खिलायेगा और जन्मा सो खायेगा, इतना ही कहकर छोड़ दिया तो इससे मुफ्तखोरी और काम न करने की प्रवृति पनपने का खतरा हो सकता है, अत: इस नारे के साथ 'खाने वाला कमाएगा' भी जोड़ा गया। इस समूचे विचार को ध्यान में रखकर ही हमें भारत की अर्थरचना करनी होगी। इसी में से रोजगार-परक उत्पादन प्रणाली का ढाँचा खड़ा होगा। दीनदयाल जी का कहना था कि हमें आर्थिक प्रश्नों पर विचार करते समय नैतिकता एवं आर्थिकेतर कारकों का भी विचार करना चाहिए।

दीनदयाल जी ने अपनी दूरदृष्टि से इस बात को भी भली प्रकार समझ लिया था कि हमारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य असीम भोग नहीं संयमित उपभोग ही होना चाहिए। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि आज हम उपभोक्तावाद पर आधारित उपभोग की जिस शैली एवं तौर-तरीकों को अपनाते जा रहे हैं उसका पर्यावरण एवं सामजिक दोनों ही दृष्टियों से लम्बे समय तक टिक पाना संभव नहीं लगता। इतना ही नहीं यह सबके लिए धारणक्षम मानव विकास की संभावनाओं को ही कमजोर किये जा रही हैं। यह इस विश्वास को इंगित करता है कि सीमित-संयमित धारणक्षम, व्यवहारक्षम उपयोगशैली एवं जीवनशैली अपनाकर ही धारणक्षम, मंगलकारी विकास के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा, दीनदयाल जी का एक और महत्त्वपूर्ण दिशा-संकेत यह भी है कि समाज को सुखी एवं संतुष्ट रखना हो तो ग्राहकाभिमुख वितरण व्यवस्था और पर्याप्त मात्रा में वितरणाभिमुख उत्पादन होना चाहिए।

दीनदयाल जी 'द्रव्य आस्तिकता' के दोष से अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक योजनाओं को बचाएं रखने पर जोर देते थे। 'द्रव्य आस्तिकता' से आशय है केवल अधिक पैसा खर्च करने से अधिक प्रगति होती है, यह विश्वास और उसी दृष्टि से किया जाने वाला द्रव्य का मापतौल।

इतना ही नहीं, केन्ज का यह विचार है कि मंदी व बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकारी निवेश, खर्च में वृद्धि व घाटे का बजट बनना चाहिए, दीनदयाल जी को यह कतई मान्य नहीं था। उनका कहना था कि हमे यह भी देखना होगा कि सरकारी निवेश व खर्च किन कामों पर हो रहा है। इस दृष्टि से साध्य-साधन विवेक का भी ध्यान रखना होगा। वे एक ऐसी अर्थरचना के पक्षधर थे जिसमे कार्य की मूल प्रेरणा अनियंत्रित प्रतियोगिता अथवा लाभ की वृत्ति न होकर 'कर्तव्य सुख' हो। व्यक्ति को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उसके द्वारा किए गए श्रम का प्रतिदान नहीं वरन् उसके योगक्षेम की व्यवस्था मानी जाए। इसके लिए अर्थचक्र को समाजशास्त्र एवं धर्मशास्त्र (नीतिशास्त्र) के अनुकूल नियोजित करना आवश्यक है। कुल मिलाकर, वे उपभोक्तावाद, स्पर्धावाद, वर्ग संघर्ष पर आधारित अर्थरचना को ठीक नहीं मानते। उनके अनुसार मनुष्य कि प्राकृत भावनाओं का संस्कार करके उसमें प्रकृति की मर्यादा के प्रकाश में अधिकाधिक उत्पादन, सामान वितरण एवं संयमित उपभोग की प्रवृति पैदा करना ही आर्थिक क्षेत्र में सांस्कृतिक कार्य है। वे देश व समाज को अर्थ विकृति से हटाकर अर्थ संस्कृति की दिशा में ले जाना चाहते थे। आज पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति या तो मात्र अर्थपरायण बनकर रह गया है या फिर अपने निजी व्यक्तित्व को नष्ट कर वह एक नंबर बनता जा रहा है। दूसरी ओर साम्यवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की अपनी रुचि, प्रकृति, प्रवृति, प्रेरणा व पहल को समाप्त कर उसे जेल के एक कैदी के समान बना दिया गया है। इस प्रकार दोनों ही व्यवस्थाओं में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खोता जा रहा है। अत: हमें ऐसी अर्थरचना बनानी होगी जिसमें व्यक्ति को गरिमापूर्ण स्थान मिले और वह पुरुषार्थशील बनकर राष्ट्र के सार्वजनीय मंगल में अपनी पूर्ण क्षमता के साथ योगदान कर सके। अन्त में मैं दीनदयाल जी की आकाँक्षा को उन्ही के शब्दों में प्रस्तुत करना चाहता हूँ, विश्व का ज्ञान और आज तक की अपनी सम्पूर्ण परंपरा के आधार पर हम ऐसा भारत निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा। जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ सम्पूर्ण मानव ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्म का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा। ❑

(विख्यात अर्थशास्त्री, लेखक, विचारक, सामाजिक क्षेत्र के अध्ययेता)

महाशक्ति बनना है तो शिक्षा में लायें क्रांति

❑ **वेदप्रताप वैदिक**

दुनिया के किसी भी शक्तिशाली और संपन्न देश में विदेशी भाषा को पढ़ाई का माध्यम नहीं रखा गया है। इसकी वजह से हमारे बच्चों की मौलिकता नष्ट होती है, उनकी विचार शक्ति घटती है, वे रट्टू तोते बन जाते हैं, वे विषयों को सीखने में देर लगाते हैं, उनमें गुलाम मानसिकता पैदा हो जाती है। इसीलिए भारत के 22 करोड़ बच्चों में मुश्किल से 2 करोड़ बच्चे ही स्नातक स्तर तक चल पाते हैं। शिक्षा का प्रसार सौ प्रतिशत करना है और उसका स्तर उठाना है तो विदेशी माध्यम की पढ़ाई के विरुद्ध संवैधानिक संशोधन करना पड़े तो वह भी करना चाहिए। यदि सरकारी नौकरियों की भर्ती में अंग्रेजी की अनिवार्यता हटा ली जाए तो अपने बच्चों पर उनके माता-पिता जुल्म क्यों करेंगे? वे हिरण पर घास क्यों लादेंगे? वे उन्हें 'पब्लिक स्कूलों' की चक्की में क्यों पिसने देंगे?

जब तक शिक्षा में क्रांति नहीं होती, भारत महाशक्ति नहीं बन सकता, लेकिन दुर्भाग्य है कि हमारे नेताओं ने इस रहस्य को अभी तक समझा ही नहीं। 1968 में छपी ज्यां जेक्स सरवन श्राइबर की किताब, 'द अमेरिकन चैलेंज' ने जब इस रहस्य को खोला तो दुनिया में तहलका मच गया। श्राइबर ने सिद्ध किया कि जो अमेरिका दूसरे महायुद्ध के पहले तक यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्रों से कर्ज लेता था और अपने बच्चों को वहाँ पढ़ने भेजता था, वह दुनिया का सबसे शक्तिशाली देश इसीलिए बन गया, क्योंकि उसने शिक्षा पर जबर्दस्त ध्यान दिया। किंतु भारत में तो 'शिक्षा' शब्द को ही उड़ा दिया गया है। शिक्षा मंत्रालय को मानव संसाधन मंत्रालय बना दिया गया है। जिस 'मनुष्य' को साध्य बनना है, उसे संसाधन बना दिया गया है। सबसे पहले तो इस मंत्रालय के नाम की शुद्धि की जाए। नाम ही अशुद्ध है तो काम शुद्ध कैसे होगा? मंत्रालय के मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने नई शिक्षा नीति के लिए सुझाव माँगे हैं- सबसे पहला सुझाव यही है।

दुनिया के सारे संपन्न राष्ट्र शिक्षा-व्यवस्था पर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 5 प्रतिशत से 8 प्रतिशत खर्च करते हैं, जबकि भारत आज तक इस आँकड़े को छू तक नहीं पाया है। कोठारी आयोग ने लगभग 50 साल पहले 6 प्रतिशत का आँकड़ा सुझाया था। आज तो वह 10 प्रतिशत होना चाहिए, क्योंकि भारत में शिक्षा की भयंकर दुर्दशा है। हमारी प्राथमिक शालाओं में लगभग 22 करोड़ बच्चे पढ़ते हैं, लेकिन उन पाठशालाओं में 25 प्रतिशत अध्यापक सदा गैर- हाजिर रहते हैं। 90 प्रतिशत शालाओं में शौचालय ही नहीं हैं। कक्षाओं में भेड़-बकरी की तरह बच्चे भरे होते हैं। छतें टपकती रहती हैं। अभी कम से कम 7-8 लाख अध्यापकों की जगह खाली है। ऐसा क्यों है? क्योंकि शिक्षा-विभागों के पास पैसे नहीं हैं। यह दुर्दशा सरकारी स्कूलों की है। इनमें प्राय: ग्रामीणों, गरीबों, पिछड़ों और आदिवासियों के बच्चे पढ़ते हैं। उनकी संख्या लगभग 70 प्रतिशत है। देश के 30 प्रतिशत बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ते हैं। ये ज्यादातर शहरी, ऊँची जातियों, मध्यम और उच्च वर्ग के होते हैं। जो लोग देश चलाते हैं यानी नेता और नौकरशाहों और सेठों के बच्चे इन स्कूलों

में पढ़ते हैं और जो लोग खेती-मजदूरी-नौकरी करते हैं, उनके बच्चे सरकारी स्कूलों में सड़ते हैं। यदि हमें शिक्षा में क्रांति करनी है तो सारे देश की पाठशालायें एक-जैसी करनी होंगी। गैर-सरकारी पाठशालायें चलें जरूर, लेकिन उनकी भर्ती-नीति, फीस-नीति और पाठ्यक्रम आदि पर कड़ी निगरानी हो। उनमें देश के 70 प्रतिशत गरीबों और वंचितों के बच्चों को प्रवेश मिले और वे वहाँ नि:शुल्क पढ़ें। देश के सभी सांसदों, विधायकों, पार्षदों, फौजियों, जजों यानी सरकार से वेतन पाने वाले सभी लोगों के लिए यह अनिवार्य हो कि वे अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में ही पढ़ायें। मेरे इस मौलिक सुझाव पर पिछले दिनों इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मुहर लगा दी और उत्तर प्रदेश सरकार को उसने आदेश दिया है कि वह यह सुझाव लागू करे। इसके लागू होते ही भारतीय शिक्षा का स्तर अपने आप ऊँचा उठ जाएगा। भारतीय शिक्षा का हाल कितना बुरा है, इसका अंदाज आप इसी से लगा सकते हैं कि 10 साल के 50 प्रतिशत बच्चे कागज पर लिखा या छपा हुआ ठीक से पढ़ नहीं सकते। 60 प्रतिशत बच्चे जोड़-बाकी और गुणा-भाग नहीं कर सकते। 14 साल के 50 प्रतिशत बच्चे पढ़ाई से तंग आकर भाग खड़े होते हैं। 'पीसा' नामक एक अंतरराष्ट्रीय शिक्षा जाँच आयोग ने बताया कि 15 वर्ष के भारत के बच्चों का स्तर सारी दुनिया में सबसे नीचे पाया गया। भारत से नीचे सिर्फ किर्गिजस्तान था। बहुत पिछड़े हुए देश का नाम भी आपने नहीं सुना होगा।

भारत की सरकारें दावा करती हैं कि देश के 70-72 प्रतिशत लोग साक्षर हैं। साक्षर हैं यानी अपना नाम लिख सकते हैं और अखबार पढ़ सकते हैं। उन्हें समझ सकते हैं या नहीं, कुछ पता नहीं। सचमुच शिक्षित लोग कितने हैं, इसका पता चले तो आप दंग रह जाएँगे। तो क्या किया जाए? सबसे पहले मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। सारे देश के बच्चों को विभिन्न

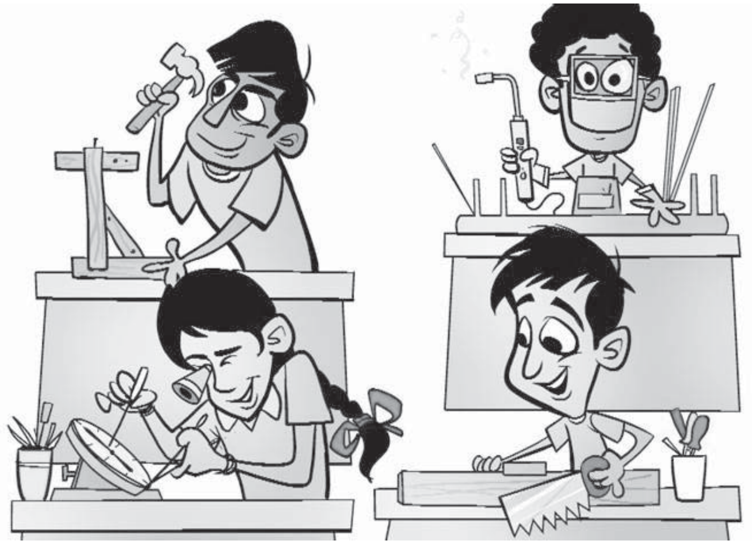

विषय पढ़ाने के लिए उन पर हिंदी या अंग्रेजी माध्यम थोपा न जाए। यदि हिंदी भाषी बच्चे हिंदी माध्यम से पढ़ना चाहें तो जरूर पढ़ें, लेकिन अंग्रेजी माध्यम की पढ़ाई पर पूर्ण प्रतिबंध हो। दुनिया के किसी भी शक्तिशाली और संपन्न देश में विदेशी भाषा को पढ़ाई का माध्यम नहीं रखा गया है। इसकी वजह से हमारे बच्चों की मौलिकता नष्ट होती है, उनकी विचार शक्ति घटती है, वे रट्टू तोते बन जाते हैं, वे विषयों को सीखने में देर लगाते हैं, उनमें गुलाम मानसिकता पैदा हो जाती है। इसीलिए भारत के 22 करोड़ बच्चों में मुश्किल से 2 करोड़ बच्चे ही स्नातक स्तर तक चल पाते हैं। शिक्षा का प्रसार सौ प्रतिशत करना है और उसका स्तर उठाना है तो विदेशी माध्यम की पढ़ाई के विरुद्ध संवैधानिक संशोधन करना पड़े तो वह भी करना चाहिए। यदि सरकारी नौकरियों की भर्ती में अंग्रेजी की अनिवार्यता हटा ली जाए तो अपने बच्चों पर उनके माता-पिता जुल्म क्यों करेंगे? वे हिरण पर घास क्यों लादेंगे? वे उन्हें 'पब्लिक स्कूलों' की चक्की में क्यों पिसने देंगे?

स्कूलों और कॉलेजों में पाठ्यक्रम मूल रूप से वही है, जो मैकाले के जमाने में था। बच्चों को रट्टू तोता बनाने की बजाय उपनिषदों के नचिकेता की तरह जिज्ञासु प्रश्नकर्ता बनाया जाए। छात्रों में मौलिक शोध की प्रवृत्ति पैदा की जाए। उन पर कागजी डिग्रियों का बोझ लादने की बजाय उन्हें काम-धंधों का कौशल सिखाया जाए।

सारे देश में बच्चों को व्यायाम, आसन, प्राणायाम और ध्यान सिखाया जाए तो उनकी कार्यशक्ति दोगुनी हो जाएगी और वे लंबे समय तक काम करते रहेंगे। परीक्षा सिर्फ किताबों की न ली जाए। उसमें व्यायाम, नैतिक शिक्षा, आचरण, अनुशासन, समाज-सेवा आदि के गुणांक भी जोड़े जाएँ। यदि बच्चों को छोटी उम्र से ही काम-धंधों का कौशल सिखाया जाएगा, तो उनकी आंतरिक शक्तियों का विकास अपने आप होगा और ये सारे सद्‌गुण विकसित करने में उन्हें आसानी होगी। यदि शिक्षा से सिर्फ नौकरियाँ मिलें और अंदर की आँख न खुले तो वह शिक्षा बेकार है। शिक्षा वह कुंजी है, जो व्यक्ति को मनुष्य बनाती है और राष्ट्र को महाशक्ति! यह कुंजी यदि हम ठीक से घुमाना सीख लें तो हमारे नौजवानों में इतनी प्रतिभा और परिश्रम की शक्ति है कि भारत का स्थान दुनिया के पहले दो-तीन देशों में हो सकता है। ❑

(भारतीय विदेश नीति परिषद के अध्यक्ष)

भावी पीढ़ी के साथ खिलवाड़

❑ **जगमोहन सिंह राजपूत**

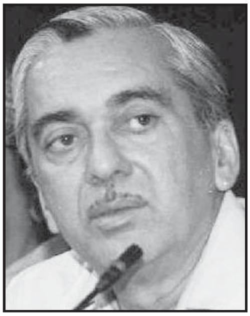

कुछ ही दिनों में बिहार का टॉपर प्रकरण जनता तथा संचार माध्यमों की दृष्टि से ओझल हो जाएगा। कोर्ट–कचहरी में प्रकरण कई वर्षों तक लटका रहेगा और अगले वर्ष की परीक्षाओं में वही सब कुछ नहीं दोहराया जाएगा, इसकी जिम्मेदारी कोई नहीं लेगा। अब नैतिक जिम्मेदारी जैसे शब्द राज व्यवस्था से अस्वीकृत होकर भुला दिए गए हैं। बिहार की जिस परीक्षा में लाखों युवा बैठे, जिसमें निम्नतम स्तर के कदाचार में उच्चतम स्तर के लगभग सभी अधिकारी सम्मिलित थे, क्या संबद्ध मंत्री का कोई नैतिक उत्तरदायित्व नहीं बनता है। यदि उन्हें जानकारी नहीं थी तो इसे घोर अक्षमता का प्रमाण क्यों नहीं माना जाना चाहिए? यदि ऐसी कोई जालसाजी 1950–65 के बीच हुई होती तो अब तक शायद मुख्यमंत्री स्वत: ही पद छोड़ चुके होते। यहाँ यह भी याद करना तर्कसंगत होगा कि बिहार में ऐसा सब कुछ शिक्षा में अनेक दशकों से हो रहा था और इसकी जानकारी सभी को थी। 1999 में बिहार के कुछ सरकारी विश्वविद्यालयों द्वारा सारे देश में जिस ढँग से बीएड की डिग्री बेची जाती थी उसका बड़ा खुलासा हुआ था। जो प्राथमिकी दर्ज की गई थी उसमें ऊँचे अधिकारियों, नेताओं तथा कुलपतियों के नाम शामिल थे। उस प्रकरण का हश्र क्या हुआ या होगा? इसका हमारी व्यवस्था में अनुमान लगाना कठिन नहीं है। मगर उस प्रकरण से राज्य सरकार तथा व्यवस्था ने कुछ नहीं सीखा, यह स्पष्ट रूप में देश के सामने इस वर्ष फिर से उजागर हो गया है।

बिहार को ऐतिहासिक दृष्टि से विचारों तथा नवाचारों का उद्‌गम स्रोत माना और जाना जाता रहा है। समसामयिक संदर्भ में देश को आपातकाल के अंधकार से बाहर निकालने में बिहार ने न केवल नेतृत्व प्रदान किया, वरन उसके युवावर्ग ने आगे आकर सारे देश के युवाओं को ही नहीं जनता को भी जाग्रत कर दिया। इस सब में जो युवा उस समय अग्रणी थे और बाद में सत्ता तक पहुँचे वे उसकी चकाचौंध में इस हद तक खो गए कि केवल अपने और अपनों तक सीमित हो गए। विकास, प्रगति, नैतिकता, गुणवत्ता वाली शिक्षा केवल शब्दमात्र रह गए जो चुनाव घोषणापत्रों तथा विज्ञापनों की शोभा बढ़ाने में जमकर उपयोग में लाए जाते रहे हैं। यहाँ यह भी याद रखना होगा कि शिक्षा में जो कुछ बिहार के संदर्भ में सम्प्रति सारे देश में चर्चित हो रहा है उसमें बिहार अकेला नहीं है। उत्तर प्रदेश में कुछ वर्ष पहले अध्यापक योग्यता परीक्षा यानी टीईटी में बहुत बड़ा घोटाला उजागर हुआ था। यहाँ के कक्षा बारह तक के इंटर कॉलेज बिना किसी भी प्रयोगशाला के विज्ञान के विद्यार्थियों को उच्चतम श्रेणी में बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण करा देते हैं और इसके लिए देश भर में जाने जाते हैं।

कुछ ही दिनों में बिहार का टॉपर प्रकरण जनता तथा संचार माध्यमों की दृष्टि से ओझल हो जाएगा। कोर्ट–कचहरी में प्रकरण कई वर्षों तक लटका रहेगा और अगले वर्ष की परीक्षाओं में वही सब कुछ नहीं दोहराया जाएगा, इसकी जिम्मेदारी कोई नहीं लेगा। अब नैतिक जिम्मेदारी जैसे शब्द राज व्यवस्था से अस्वीकृत होकर भुला दिए गए हैं। बिहार की जिस परीक्षा में लाखों युवा बैठे, जिसमें निम्नतम स्तर के कदाचार में उच्चतम स्तर के लगभग सभी अधिकारी सम्मिलित थे, क्या संबद्ध मंत्री का कोई नैतिक उत्तरदायित्व नहीं बनता है। यदि उन्हें जानकारी नहीं थी तो इसे घोर अक्षमता का प्रमाण क्यों नहीं माना जाना चाहिए? यहाँ यह भी याद करना तर्कसंगत होगा कि बिहार में ऐसा सब कुछ शिक्षा में अनेक दशकों से हो रहा था और इसकी जानकारी सभी को थी।

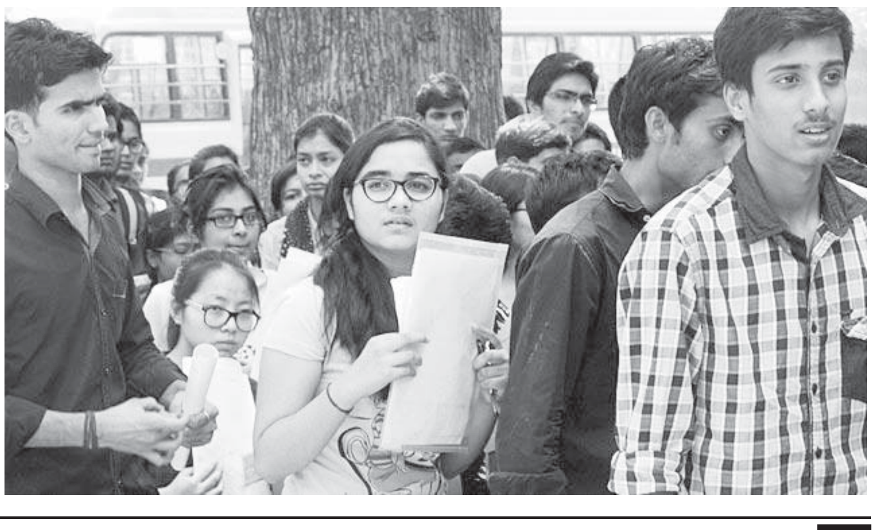

नकल कराने में यह देश का सबसे बड़ा प्रदेश बिहार से कतई पीछे नहीं है। मध्य प्रदेश का व्यापम घोटाला अनेक वर्षों चला और लाखों युवाओं के जीवन में अंधकार भर गया।

इधर एक खबर आगरा विश्वविद्यालय में कापियों के मूल्यांकन को लेकर छपी है। अंग्रेजी के सम्मानित परीक्षक स्वयं उस भाषा के दो-चार शब्द भी सही नहीं लिख पाए। अर्थशास्त्र के प्राध्यापक आइएमएफ से परिचित नहीं थे। उन्हें वापस भेज दिया गया। ऐसा किया जाना साहसपूर्ण कदम है मगर प्रबुद्ध समाज के लिए यह विचारणीय होना ही चाहिए कि यह या ऐसे ही इनके अन्य सहयोगी और साथी आगे चलकर कुलपति या बोर्ड के अध्यक्ष जैसे पदों पर सुशोभित होंगे तब देश की नई पीढ़ी का क्या होगा? केंद्र सरकार के एक विश्वविद्यालय की महिला कुलपति को फर्जी दस्तावेजों तथा उपाधियों के आधार पर बर्खास्त किया गया है। दुर्भाग्य यह है कि अकादमिक जगत में किसी को भी अब ऐसे प्रकरणों के उजागर होने पर आश्चर्य नहीं होता है। कुछ महीने पहले दिल्ली से यह खबरें भी कई बार आईं कि तीस प्रतिशत फर्जी डिग्रीधारी भी वकालत के पेशे से जुड़े हैं। आशा करनी चाहिए कि ऐसा नहीं है। आशंकाएँ तो हर तरफ से आ ही रही हैं। पूरे पन्ने के विज्ञापन उन विश्वविद्यालयों की ओर आकर्षित करते हैं जो केवल धनार्जन और उसके एवज में डिग्री बाँटने के अलावा और किसी में रुचि नहीं रखते हैं। न ज्ञान में और न कौशल में। इन पर अंकुश लगाने में सरकारें असफल रही हैं। केवल जाग्रत और संगठित समाज ही इन्हें सही रास्ता दिखा सकता है और युवाओं का भविष्य बचा सकता है।

पिछले कई दशकों से बिहार के अधिकांश सक्षम तथा संसाधन संपन्न नागरिक अपने बच्चों को बिहार से बाहर भेजकर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेते रहे हैं। वे अनेक बैठकों, संगोष्ठियों में बिहार की शिक्षा व्यवस्था की आलोचना बार बार दोहराते रहते हैं। अपेक्षा तो यह है कि बिहार का सभ्य समाज जाग्रत हो, उन लाखों बच्चों के भविष्य पर चिंतित हो जो वहीं की व्यवस्था में किसी प्रकार शिक्षा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं और नकल माफिया तथा अपने पदनाम को कलंकित करने वाले अधिकारियों, प्राचार्यों तथा अध्यापकों के निर्मम स्वार्थों की बलि चढ़ जाते हैं। बारहवीं की परीक्षा में टॉपर घोषित उस बच्ची की स्थिति कितनों को दहला देगी जब वह कहती है कि मैं तो केवल द्वितीय श्रेणी चाहती थी, मेरे परिवारवालों ने मुझे टॉप करा दिया। क्या व्यवस्था यह नहीं समझती है कि 15-18 वर्ष की आयु वर्ग के युवाओं को बहलाना और उन्हें सुनहरे सपने दिखाना कितना आसान होता है। क्या यह छात्र दिखाए गए सब्जबाग से अपने को दूर रख सकती थी। भारत की नई पीढ़ी के साथ हो रहा जालसाजी का यह तांडव अपने आप में एक जर्जर व्यवस्था को पूरी तरह बदलने के स्पष्ट संकेत देता है। इन्हें न समझना राष्ट्रीय स्तर पर की जा रही बड़ी भूल होगी जिसके परिणाम आगे चलकर अत्यंत भयावह होंगे। लाखों युवा आज भी देश में हैं जिनके पास डिग्री है मगर कैसे मिली यह वे कहने को तैयार नहीं हैं। उनके पास डिग्री के लायक न तो कोई ज्ञान है और न ही कौशल। सरकारी संस्थानों, स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में आवश्यक संसाधन नहीं हैं, अधिकांश निजी संस्थाएँ लाभांश पर ही अपने सारे प्रयास केंद्रित कराती हैं। ऐसे में विद्यार्थी ठगा सा बाहर आकर अपने को अत्यंत निराशाजनक स्थिति में पाता है। क्या भारत का समाज अपनी भावी पीढ़ी को ईमानदारी से और निष्ठापूर्वक सही स्वरूप में विकसित कर रहा है? ❑

(पूर्व निदेशक, एन.सी.ई.आर.टी.)

क्यों नहीं जागता हमारा राष्ट्रीय गौरव

वैसे तो आज का भारत दो प्रकार की मान्यताओं का देश है। एक मान्यता के अनुसार भारत गौरवशाली प्राचीन राष्ट्र हैं। किन्तु कुछ लोग ऐसे हैं जो इस देश को 1947 में 'ए नेशन इन दि मेकिंग' की कल्पना के आधार पर निर्माणाधीन राष्ट्र मानते थे। स्वाभाविक है कि अंग्रेज शासक, उनकी वेशभूषा आदि उन्हें श्रेष्ठ दिखायी पड़ेंगे। इसी दूसरी मान्यता के चलते किंग जार्ज श्रेष्ठ दिखायी पड़ने लगते थे। संविधान में देश के नाम परिवर्तन के पीछे भी यही साजिश कामकर रही थी कि भारत भुला दो और इण्डिया के पीछे-पीछे दौड़ों। क्योंकि भारत याद आयेगा तो भरत याद आयेंगे। शकुंतला, दुष्यन्त, हस्तिनापुर, महाभारत, रामायण, वेद, पुराण, राम, कृष्ण, शिव, शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह याद आयेंगे किन्तु इण्डिया कहते ही 1947 याद आयेगा, अंग्रेजों की दो सौ साल की गुलामी याद आयेगी, भारतीयों की हीनता सामने आयेगी।

❑ **साकेन्द्र प्रताप वर्मा**

एक ओर बहत्तर साल पहले 9 अगस्त 1942 को आजादी के आंदोलन में अंग्रेजों भारत छोड़ो का नारा दिया गया था, कि अंग्रेजी भी जायेंगे और अंग्रेजियत भी जायेगी। जबकि दूसरी ओर लगभग 175 साल पहले 12 अक्टूबर 1836 को मैकाले ने अपने पिता को एक पत्र में लिखा था कि आगामी सौ सालों के बाद भारत में रूप और रंग से तो लोग भारतीय दिखायी देंगे किंतु वाणी विचार और व्यवहार से अंग्रेज प्रतीत होंगे। आजादी के 68 साल बाद ऐसा लगता है कि मैकाले की कल्पना इस देश में साकार हो रही है। वैसे जब अपना देश अंग्रेजों की दासता से मुक्त हुआ था तब हमें लगा था कि शायद हम गुलामी से मुक्त पाकर एक नये सूर्योदय की पहली किरण के साथ अपने आत्मगौरव को पहचानेंगे तथा भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत को यशस्वी बनाने का प्रयास करेगा। किन्तु अंग्रेज तो चले गये और अंग्रेजियत को हमने जाते-जाते रोक लिया। वैसे तो आजादी प्राप्त करने के साथ ही हम कुछ-कुछ गुलाम भी बने रहना चाहते थे इसीलिये 14-15 अगस्त 1947 को राष्ट्राध्यक्ष (गर्वनर जनरल) के रूप में माउन्टबेटेन रूपी अंग्रेज ही स्वतंत्र भारत की ओर से किंग जार्ज अष्टम् के प्रति वफादारी की शपथ ले रहा था। भारत में आजादी प्राप्त करने के दिन शपथ लेने वाला भी अंग्रेज, शपथ दिलाने वाला मुख्य न्यायाधीश स्पेस भी अंग्रेजी इतना ही नहीं तीनों सेनाध्यक्ष याने थलसेनाध्यक्ष लाकहर्ट, वायुसेनाध्यक्ष एमहर्स्ट तथा नौ सेनाध्यक्ष जे.टी. एकहाल भी अंग्रेज ही थे । उस दिन ब्रिटिश झण्डा सलामी देकर सम्मानपूर्वक वर्ष में 6 बार फहराने की शर्त के साथ उतारा गया, भले ही कालान्तर में यह अस्वीकार्य हो गया। किन्तु नौसेना के ध्वज पर अंग्रेजी साम्राज्य का प्रतीक चिन्ह सेन्ट जार्ज का क्रास, जिसके एक कोने में तिरंगा बना है, को ही स्वीकार कर लिया गया। शासन व्यवस्था भी भारत अधिनियम 1935 के आधार पर चलती रही। जबकि पाकिस्तान ने इस सब बातों को अस्वीकार्य कर दिया। उसकी सारी व्यवस्थाओं का नियंत्रण उसकी नीति के अनुसार हो गया। जिन्ना ने प्रथम राष्ट्राध्यक्ष के रूप में पाकिस्तान की ओर से शपथ ली। आखिर आत्मगौरव की यह अनुभूति भारत में क्यों नहीं जगी।

संविधान बनाते समय तक हम देश का नाम नहीं तय कर पाये इसलिये उसकी पहली पंक्तियों में ही 'इण्डिया दैट इज भारत याने भारत जो कि इण्डिया है' लिख दिया। ऐसा लगा कि हमारी आत्मा में मैकाले की आत्मा का प्रवेश हो गया है। कुछ समय पश्चात् हमने अंग्रेजों की गुलामी के कई प्रतीक हटाने प्रारम्भ किये। तमाम सड़कों, भवनों और संस्थानों के नाम बदले गये, अंग्रेजों की मूर्तियां हटायीं गयीं। यहाँ तक कि नागपुर में महाराष्ट्र के विधान भवन के सम्मुख लगी अंग्रेज महारानी विक्टोरिया की मूर्ति भी हटायी गयी, और मुम्बई में काला घोड़ा नामक स्थान पर घोड़े पर सवार इंग्लैंड के राजा की प्रतिमा भी हटायी गयी।

परन्तु 65 साल बाद किंग जॉर्ज से अपना नाता जोड़ने की मानसिकता को जाग्रत हो रही है, यह एक गंभीर प्रश्न है। छत्रपति शाहू जी महाराज

तो भारतीय राजा थे। लखनऊ के चिकित्सा विश्वविद्यालय (मेडिकल कॉलेज) से उनका नाम हटाकर किंग जार्ज का नाम जोड़ने का प्रयास भारत के अन्य नेताओं की उस छवि के लिए गहरा धक्का है जो पाइन्ट शर्ट के मोह में न फँसकर सदैव कुर्ता धोती सदरी में ही दिखायी देती है। वस्तुत: यह नाम परिवर्तन केवल सपा-बसपा के बीच का राजनैतिक मुद्दा नहीं है। ये मुद्दा देश के स्वाभिमान से सम्बद्ध है। ऐसी अवस्था में यह नाम परिवर्तन गुलामी को प्रकट करेगा। वैसे पहले भी कुछ लोगों द्वारा यह माँग उठायी गयी थी कि छत्रपति शाहू जी महाराज चिकित्सा विश्वविद्यालय के स्थान पर इसका नाम किंग जार्ज मेडिकल कॉलेज ही रखा जाय जिससे दुनिया में हमारी पहचान बनी रहे। धन्य है वे लोग जो पढ़-लिखकर डॉक्टर तो बन गये किन्तु न तो समाज का ज्ञान प्राप्त हो सका और न ही आत्मगौरव का स्वाभिमान जाग्रत हो सका। शाहू जी महाराज इस भारत की माटी में जन्मे थे जबकि किंग जार्ज भारतीय अस्मिता को पैरों तले कुचलने वाला अंग्रेज मात्र था। शाहू जी महाराज को अपनी वंश परम्परा से जोड़ने पर तो गर्व किया जा सकता है। जबकि किंग जॉर्ज का नाम जुड़ते ही अंग्रेजों की गुलामी याद आती है। भगतसिंह का बलिदान याद आता है, जलियाँवाला बाग नरसंहार याद आता है, लाला लाजपतराय पर बरसायी गयी लाठियां याद आती हैं, सावरकर और चन्द्रशेखर आजाद ही नहीं नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की रहस्यमयी मौत भी याद आती है। इसलिये किंग जार्ज के नाम पर गर्वानुभूति का कोई भी कारण नहीं होना चाहिए।

वैसे तो आज का भारत दो प्रकार की मान्यताओं का देश है। एक मान्यता के अनुसार भारत गौरवशाली प्राचीन राष्ट्र हैं। किन्तु कुछ लोग ऐसे हैं जो इस देश को 1947 में 'ए नेशन इन दि मेकिंग' की कल्पना के आधार पर निर्माणाधीन राष्ट्र मानते थे। स्वाभाविक है कि अंग्रेज शासक, उनकी वेशभूषा आदि उन्हें श्रेष्ठ दिखायी पड़ेंगे। इसी दूसरी मान्यता के चलते किंग जार्ज श्रेष्ठ दिखायी पड़ने लगते थे। संविधान में देश के नाम परिवर्तन के पीछे भी यही साजिश कामकर रही थी कि भारत भुला दो और इण्डिया के पीछे-पीछे दौड़ों। क्योंकि भारत याद आयेगा तो भरत याद आयेंगे। शकुंतला, दुष्यन्त, हस्तिनापुर, महाभारत, रामायण, वेद, पुराण, राम, कृष्ण, शिव, शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह याद आयेंगे किन्तु इण्डिया कहते ही 1947 याद आयेगा, अंग्रेजों की दो सौ साल की गुलामी याद आयेगी, भारतीयों की हीनता सामने आयेगी।

हमारी दृष्टि कितनी विचित्र है इसका अनुमान भारत के राष्ट्रध्वज से लगाया जा सकता है। तिरंगा झण्डा इस बात को प्रकट करता है कि यह राष्ट्र 1947 के बाद बना। उसके पहले न तो यह देश था, न कोई इसका ध्वज था। राम, कृष्ण, राणा, शिवा, पृथ्वीराज सभी ध्वजविहीन राजा था अन्यथा उन्हीं के ध्वज को राष्ट्रध्वज स्वीकार करते। किन्तु उसके पीछे भी यही भाव था कि तिरंगा झण्डा सामने आते ही 1947 याद आयेगा, उससे पहले ही की हमारी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय विरासत भूल जायेगी। 1911 में कांग्रेस अधिवेशन में दूसरे दिन ब्रिटिश सम्राट जॉर्ज पंचम के स्वागत में पढ़ी गयी कविता 'जन गण मन अधिनायक जय हे' का कुछ अंश देश का राष्ट्रगान बन गया-वन्दे मातरम् पसंद नहीं आया। अभी तक उच्चतर शिक्षा संस्थानों में अजीब सा चोगा और हुड़ पहनकर डिग्री लेने का चलन गुलामी को प्रकट करता था। संविधान का 10 प्रतिशत हिस्सा भारत अधिनियम 1935, कैबिनेट मिशन प्लान एवं भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम से उधार लेने के कारण राज्यसभा में 2 सितम्बर, 1953 को डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि लोग मुझे संविधान निर्माता समझते हैं-जबकि मैं तो मात्र भाड़े का व्यक्ति मात्र था। किन्तु इसी संविधान को हमने स्वीकार करके अपने आत्मगौरव को कलंकित किया आज मोदी सरकार सोच रही है, नहीं तो अब तक प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजी साम्राज्य की 1920 में रक्षा करने वाले सैनिकों के बलिदानों की स्मृति में बने इण्डिया गेट पर हम गर्व करते हैं, किन्तु 1947 में आजादी दिलाने वाले 1857 से 1947 तक के बलिदानियों और आतंकियों से रक्षा करने वाले जाबाँजों की स्मृति में हम कुछ नहीं बना सके। भले ही कुछ शहीद सैनिकों की स्मृति में अमर जवान ज्योति स्थापित है। अंग्रेजी दासता के कुछ प्रतीक तो हट भी गये किन्तु मुगल दास्ता के प्रतीक तो आज भी हमारा सिर लज्जा से झुका रहे हैं। सोमनाथ मंदिर के अतिरिक्त राम-कृष्ण, बाबा विश्वनाथ के स्थान भी गुलामी की याद दिला रहे हैं। अपनी दो पीढ़ियों अर्थात् पिता और चारों पुत्रों का बलिदान देने वाले गुरु गोविन्द सिंह के पिता की बलिदान स्थली पर औरंगजेब द्वारा शीश काटने के कारण बने गुरुद्वारे से चंद कदमों पर अपमानित करती औरंगजेब रोड आज भी बनी हुयी है। प्रत्येक मुगल बादशाह की नजर हिन्दू कन्याओं की अस्मत, देश के मंदिरों और देश की सम्पदा पर रहती थी फिर भी अकबर महान पढ़ाकर देश को गुमराह करना आत्मगौरव की शून्यता का परिचायक है। टीवी पर चाणक्य और वीर शिवाजी सीरीयलों के प्रसारण को रोक देना आत्मगौरव हीनता है। देश को सच्चा इतिहास न पढ़ाना इससे भी शर्मनाक है।

दुनिया के देशों ने अपने आत्मगौरव की रक्षा के लिए अत्यन्त दृढ़ कदम उठाने में कोई संकोच नहीं किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिका के नौसैनिक जहाज पर जापान ने बम गिरा दिया जिससे सैकड़ों लोग मार डाले गये। अमेरिका को लगा कि जापान ने अमेरिका के राष्ट्रीय गौरव को चुनौती दी है। अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी पर तुरंत परमाणु बम डाल का सर्वनाश कर डाला। 1492 में कोलम्बस ने अमेरिका में जो अत्याचार किया था, उससे नाराज अमेरिका की एक अदालत ने 500 साल बाद 1992 में कोलम्बस के पुतले को फाँसी पर लटकाने का आदेश दिया। 1914 में रूस ने पौलेण्ड को जीता तथा उसकी राजधानी वर्साय में मुख्य में चौराहे पर पौलेण्डवासियों को गुलामी की हमेशा याद आती रहे इस नीयत से एक चर्च बनवाया। जिसे 1918 में पौलेण्डवासियों ने आजाद होते ही सबसे पहले ध्वस्त करवा दिया। रूस के लेनिनग्राद शहर में स्थित विन्टर पैलेस नामक राजमहल में कुछ मूर्तियां आज भी विद्यमान हैं, जबकि कम्युनिस्ट तो नास्तिक होते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जब हिटलर ने सेनायें लेनिनग्राद शहर पहुंचती तो रूस के जार राजाओं की सेना ने जमकर संघर्ष किया। इससे हिटलर की जर्मन सेनायें चिढ़ गयी और उन्होंने राजमहल में स्थित ग्रीक देवी-देवताओं की कुछ प्राचीन मूर्तियां तोड़ डाली। हमें पता रहना चाहिए कि द्वितीय विश्वयुद्ध में जैसे ही रूस जीता, उसने उन मूर्तियों की पुनर्स्थापना करवायी, जबकि साम्यवादी रूस तो नास्तिक देश है। किन्तु यह उसका राष्ट्रीय गौरव था। 1995 में दक्षिण कोरिया की आजादी की स्वर्ण जयंती उत्सव हुआ। इस वर्ष उन्होंने वहाँ के राष्ट्रीय संग्रहालय कैपिटल बिल्डिंग को ध्वस्त करवाया तथा 1200 करोड़ रुपये खर्च ➡

'शिक्षा-भूषण' विक्रम संवत् 2073 अखिल भारतीय शिक्षक सम्मान समारोह, दिल्ली

शिक्षक को शिक्षा व्यवस्था के साथ विद्या और संस्कारों की परम्परा को भी साथ लेकर चलना चाहिये – *मोहन राव भागवत*

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक डॉ. मोहन राव भागवत जी ने सिविक सेंटर स्थिति केदारनाथ साहनी आडिटोरियम में 'शिक्षा भूषण' अखिल भारतीय शिक्षक सम्मान समारोह में शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि शिक्षा में परम्परा चलनी चाहिए, शिक्षक को शिक्षा व्यवस्था के साथ विद्या और संस्कारों की परम्परा को भी साथ लेकर चलना चाहिए। सभी विद्यालय अच्छी ही शिक्षा छात्रों को देते हैं फिर भी चोरी डकैती, अपराध आदि के समाचार आज टीवी और अखबारों में देखने को मिल रहे हैं तो कमी कहाँ है? सर्वप्रथम बच्चे माँ, फिर पिता बाद में अध्यापक के पास सीखते हैं। बच्चों के माता-पिता के साथ अधिक समय रहने के कारण माता-पिता की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए पहले माता-पिता को शिक्षक की तरह बनना पड़ेगा साथ ही शिक्षक को भी छात्र की माता तथा पिता का भाव अंगीकार करना चाहिए। शिक्षा जगत में जो शिक्षा मिलती है उसको तय करने का विवेक शिक्षक में रहता है। शिक्षक को चली आ रही शिक्षा व्यवस्था के अतिरिक्त अपनी ओर से अलग से चरित्र निर्माण के संस्कार छात्रों में डालने पड़ेंगे। लेकिन यह भी सत्य है कि हम जो सुनते हैं वह नहीं सीखते और जो दिखता है वह शीघ्र सीख जाते हैं। आज सिखाने वालों में जो दिखना चाहिए वह नहीं दिखता और जो नहीं दिखना चाहिए वह दिख रहा है। इसलिए शिक्षकों को स्वयं अपने कृतित्व का उदाहरण बनकर दिखाना चाहिए तभी वह छात्रों को सही दिशा दे सकेंगे। हमारे सम्मुख ऐसे शिक्षा भूषण पुरस्कार से पुरस्कृत तीन उदाहरण यहाँ है, आज के कार्यक्रम का उद्देश्य भी यही है कि ऐसे शिक्षकों से प्रेरणा लेकर और शिक्षक भी ऐसे उदाहरण बन कर समाज को संस्कारित कर फिर से चरित्रवान समाज खड़ा करें।

कार्यक्रम के विशेष अतिथि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति तथा गायत्री परिवार के अंतर्राष्ट्रीय प्रमुख डॉ. प्रणव पंड्या जी ने बताया कि हर व्यक्ति को जीवन भर सीखना और सिखाना चाहिए। शिक्षा जीवन के मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए। शिक्षा एक एकांगी चीज है जब तक उसमें विद्या न जुड़ी हो। आज शिक्षा अच्छा पैकेज देने का माध्यम बन गई है। पैसे के बल पर डिग्रियाँ बाँटने वाले संस्थानों की बाढ़ आ गई है। 1991 के बाद उदारीकरण की नीति बनाते समय हमने शिक्षा नीति के बारे में कुछ सोचा नहीं। इसका परिणाम आज अपने ही देश के विरुद्ध नारे लगाते हुए छात्रों के रूप में दिख रहा है। हम क्या पहनते हैं इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, फर्क पड़ता है हमारा चिंतन कैसा है। शिक्षक ही बच्चों का भाग्य विधाता होता है, शिक्षा व्यवस्था जैसी भी चलती रहे, लेकिन शिक्षक को अपना कर्तव्य बोध नहीं छोड़ना चाहिए।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा आयोजित 'शिक्षा भूषण' अखिल भारतीय शिक्षक सम्मान समारोह में शिक्षा बचाओ आंदोलन से जुड़े वरिष्ठ शिक्षाविद् श्री दीनानाथ बत्रा, डॉ. प्रभाकर भानूदास मांडे, सुश्री मंजूश्री बलवंत राव रहालकर को डॉ. मोहन भागवत जी तथा डॉ. प्रणव पंड्या जी ने 'शिक्षा भूषण' सम्मान से सम्मानित किया।

इस अवसर पर श्री सुरेश जी सोनी सह सरकार्यवाह, डॉ. कृष्ण गोपाल जी, प्रो. अनिरुद्ध देशपाण्डे जी, महासंघ के महामंत्री एवं राजस्थान वि.वि. के उपकुलपति प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल, संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर, दिल्ली अध्यापक परिषद के अध्यक्ष श्री जय भगवान गोयल सहित अनेकों पदाधिकारियों, गणमान्य व्यक्तियों व भारी संख्या में शिक्षकों की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। समारोह की अध्यक्षता शैक्षिक फाउंडेशन के अध्यक्ष प्रोफेसर के. नरहरि ने की।

दिल्ली अध्यापक परिषद के अध्यक्ष श्री जयभगवान गोयल ने शिक्षा-भूषण सम्मान कार्यक्रम में आये सभी विशिष्ट जनों व व्यवस्था में सहयोग करने वाले कार्यकर्ताओं का तथा अ.भा.रा.शै.महासंघ ने इस कार्यक्रम हेतु दिल्ली अध्यापक परिषद् को दायित्व देने का भी आभार प्रदर्शित किया।

➡ करके दूसरा राष्ट्रीय संग्रहालय बनवाया। क्योंकि कैपिटल बिल्डिंग दक्षिण कोरिया की राजधानी सिओल के बीचों-बीच में खड़ी वह इमारत थी, जो दक्षिण कोरिया को जापान का गुलाम होने की याद दिला रही थी।

किन्तु भारत में किंग जार्ज, अंग्रेजी और अंग्रेजीयत तथा मुगल दासता के प्रतीकों को देखकर रक्त में उबाल न आना, आश्चर्यजनक मुद्दा है। ये देश के भविष्य के लिए अच्छे लक्षणों को प्रकट नहीं करता है। बाकी बातों को यदि भुला भी दें तो भी हमें देश याद रखना चाहिए कि आजाद भारत के हर हिस्से में अपना राष्ट्र ध्वज आज भी नहीं फहराया जा सकता है। कश्मीर के लाल चौक में इस काम को करने के लिए एक यात्रा निकालनी पड़ी। तब से 2007 तक सीआरपीएफ के महानिदेशक वहां झण्डा फहराते थे। लेकिन 2008 में ऐसा नहीं हुआ। जब कुछ राष्ट्रभक्त नवयुवक फिर उस स्थान पर झण्डा फहराने गये तो पिछली कश्मीर की सरकार के इशारे पर उन नवयुवकों की पिटाई करके अपनी देशभक्ति का परिचय दिया। जबकि जे.के.एल.एफ. ने उस साल 26 जनवरी को उसी लालचौक पर रैली करने और अपना झण्डा फहराने की घोषणा कर रखी थी, किन्तु अब सरकार ने उन विषैले फनों को कुचलने की जरूरत समझीं। विडम्बना यह है कि हमारा आत्मगौरव बोध धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है। स्वतंत्रता दिवस पर इसका स्मरण होना चाहिए। ❑

(स्वतंत्र लेखक, स्तम्भकार)

रुक्टा (राष्ट्रीय) ने प्रदेश भर में किये गुरुवन्दन कार्यक्रम

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की कार्ययोजना के अनुरूप प्रदेश में राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) की विभिन्न इकाईयों द्वारा गुरुवन्दन कार्यक्रम का आयोजन किया गया। राजकीय महाविद्यालय, अजमेर में आयोजित कार्यक्रम में मुख्य वक्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में क्षेत्रीय कार्यवाह श्री हनुमान सिंह जी राठौड़ ने भारत के गुरुत्व की व्याख्या करते हुए हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक ढाँचे को सर्वश्रेष्ठ बताया। राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर में डॉ. एन. एल. शर्मा के मुख्य अतिथ्य से कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उन्होंने कहा की जीवन तभी सार्थक है जब हम एक गुरु के निर्देशन में कार्यरत रहें। राजकीय महाविद्यालय, गोगुन्दा में आयोजित कार्यक्रम के मुख्य वक्ता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विभाग कार्यवाह श्री के. एल. चौबीसा थे। राजकीय महाविद्यालय, तारानगर में आयोजित कार्यक्रम के मुख्य वक्ता डॉ. सुरेन्द्र सोनी रहे।

राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय उदयपुर में आयोजित कार्यक्रम की मुख्य वक्ता साहनी भुवनेश्वरी देवी ने अपने उदबोधन में गुरु पूजा को व्यक्ति पूजा न होकर ज्ञान की पूजा बताया। उन्होंने भारत की गौरवशाली गुरु परम्परा से सन्दीपन, वेदव्यास, चाणक्य, रामकृष्ण परमहंस के जीवन का उदाहरण देते हुए गुरु श्री महत्ता प्रतिपादित की। राजकीय महिला महाविद्यालय, सार्दुलशहर में गुरुवंदन कार्यक्रम पी.सी. आचार्य के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। राजकीय महाविद्यालय सांभरलेक में कार्यक्रम में मुख्य वक्ता डॉ. ओ. पी. दायमा है।

राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर में मुख्य वक्ता प्रो. अनिल कुमार गुप्ता थे। कोटा विश्वविद्यालय में गुरुवन्दन कार्यक्रम कुलपति प्रो. पी. के. दशोरा के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। राजकीय महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ में आयोजित कार्यक्रम में मुख्य वक्ता प्रो. सुरेशचन्द्र राजोरा ने का कि शिक्षकों को अपने पूर्व जन्म के सद्कर्मों के कारण गुरु बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। उन्होंने शिक्षकों को सनातन परम्परा अनुसार अपने गुरुत्व के निर्वहन का आह्वान किया। राजर्षि महाविद्यालय अलवर में गुरुवंदन कार्यक्रम की मुख्य वक्ता प्रजापति ब्रह्माकुमारी सेवा केन्द्र की प्रभारी ममता दीदी ने गुरु को जीवन का अंधकार दूर करने वाला बताया। एम. एस. महाविद्यालय, बीकानेर में कार्यक्रम संगठन अध्यक्ष डॉ. दिग्विजयसिंह के मुख्य आतिथ्य में आयोजित किया गया जिसके मुख्य वक्ता डॉ. रजनी रमण रहे। राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा में आयोजित कार्यक्रम में मुख्य वक्ता संगठन के महामंत्री डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने अपने गुरुत्व के माध्यम से विद्यार्थी के शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का एकात्मविकास करने का आग्रह किया। राजकीय महाविद्यालय, नसीराबाद में राजगढ़ में भैरवधाम के मुख्य उपासक चंपालाल जी महाराज के आतिथ्य में आयोजित कार्यक्रम में उन्होंने गुरु दक्षिणा के रूप में नशा मुक्ति एवं कन्या भ्रूण हत्या के कृत्य से दूर रहने का संकल्प करवाया।

राजकीय महाविद्यालय, बीबीरानी, अलवर में मुख्य वक्ता संगठन के संयुक्त मंत्री डॉ. गंगाश्याम गुर्जर रहे। राजकीय महाविद्यालय, पुष्कर में आयोजित कार्यक्रम चित्रकूट धाम के पाठक जी महाराज में सानिध्य में सम्पन्न हुआ। राजकीय महाविद्यालय, सरदार शहर में मुख्य वक्ता डॉ. चेतन स्वामी ने गुरु की महत्ता बताई। श्री गंगानगर में आयोजित कार्यक्रम में मुख्य वक्ता गायत्री परिवार के डॉ. रावत उपाध्याय ने कहा कि सच्चा ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है जब शिष्य गुरु में प्रति निष्ठावान हो। राजकीय महाविद्यालय झालावाड़ में कार्यक्रम प्राचार्य डॉ. के. बी. भारतीय में अतिथ्य में सम्पन्न हुआ। राजकीय महाविद्यालय चूरू में आयोजित कार्यक्रम के मुख्य वक्ता रुक्टा (राष्ट्रीय) में संगठन मंत्री डॉ. ग्यारसीलाल जाट रहे।

राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर में आयोजित कार्यक्रम में पूर्व प्राचार्य डॉ. उमेश चतुर्वेदी ने गुरु एवं शिष्य को एक दूसरे का पूरक बताया। राजकीय महाविद्यालय खेतडी में आयोजित कार्यक्रम में मुख्य अतिथि रामकृष्ण मिशन के सचिव स्वामी आत्मनिष्ठांनद थे। राजकीय महाविद्यालय कोटा के कार्यक्रम में प्राचार्य डॉ. बी. एल. शर्मा ने कहा कि मशीनीकरण के दौर में गुरुत्व का महत्व एवं शिक्षक का दायित्व बढा है। राजकीय महाविद्यालय, भोपालगढ़ में कार्यक्रम में मुख्य अतिथि गोविन्दराम शास्त्री ने शिक्षकों से कड़ी मेहनत एवं तर्कसंगत ज्ञान से युवा पीढ़ी को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करने का आह्वान किया।

इसके अतिरिक्त आयुक्तालय कॉलेज शिक्षा, राजकीय महाविद्यालय, जयपुर, जोधपुर, अनूपगढ़, प्रतापगढ़, ओसियाँ, कन्या सीकर, कन्या नाथद्वारा, टोंक, कोटपूतली, कन्या कोटपूतली, कपासन, नोहर, कन्या अलवर, भीलवाड़ा, चौमू, हनुमानगढ़, गंगापुरसिटी, केकडी, विधि अजमेर, बून्दी, पाली, श्रीकरणपुर, कामर्स कोटा, रतनगढ, नवलगढ़, राजगढ़-अलवर, गोविन्दगढ- अलवर, कन्या भरतपुर, कन्या झुन्झुनू, ब्यावर, किशनगढ़, निम्बाहेडा, कन्या शाहपुरा, सूरतगढ, खालसा कॉलेज अनूपगढ़, सहित प्रदेश की 143 इकाइयों में गुरुवन्दन के कार्यक्रम सम्पन्न हुये।

प्रदेशभर में वृक्षारोपण

राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ राष्ट्रीय की विभिन्न इकाइयों द्वारा पर्यावरण संरक्षण में अपना सहयोग करते हुए महाविद्यालयों में वृक्षारोपण किया तथा उनकी सार संभाल का संकल्प लिया। राजकीय महाविद्यालय सवाई माधोपुर, सिरोही, अजमेर जे.डी.बी. कन्या महाविद्यालय अलवर, कन्या महाविद्यालय चौमू, झालावाड़, कपासन, सरदार शहर, नसीराबाद, चिमनपुरा, चूरू, कन्या महाविद्यालय नाथद्वारा, कन्या शाहपुरा, गंगापुर सिटी सहित 43 इकाईयों में अभी तक 600 से अधिक वृक्षारोपण किए गए हैं।

शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर एवं माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर के संयुक्त तत्वावधान में

'माध्यमिक परीक्षा प्रणाली : समीक्षा एवं समुन्नयन' विषय पर द्वि-दिवसीय संगोष्ठी अजमेर में सम्पन्न

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर एवं शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में 30-31 जुलाई 2016 को अजमेर में माध्यमिक परीक्षा प्रणाली की वर्तमान कमियों को दूर कर उसे समुन्नत करने हेतु द्विदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में उद्घाटन एवं समापन सत्र सहित पाँच तकनीकी सत्रों में वर्तमान माध्यमिक परीक्षा प्रणाली की समीक्षा कर उसे उत्कृष्ट बनाने हेतु माध्यमिक परीक्षा के पाठ्यक्रम विभिन्न एवं परीक्षा व्यवस्था से जुड़े शिक्षाविदों द्वारा सुझाव प्रस्तुत किये गये। संगोष्ठी में सम्पूर्ण राज्य से प्रतिभागी विद्वान सम्मिलित हुये।

आधार भाषण श्री हनुमान सिंह राठौड़ (अनुसंधान अधिकारी, शैक्षिक प्रौद्योगिकी विभाग) ने बताया कि परीक्षा प्रणाली मूल्यांकन का एक हिस्सा है अत: मूल्यांकन में विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व, मन बुद्धि, शरीर, आत्मा के विकास का मूल्याङ्कन होना चाहिए। इसके लिये मूल्यांकनकर्ता शिक्षक भी उत्कृष्ट होने चाहिये। इसलिये आज की परिस्थितियों में सतत् मूल्यांकन कैसे हो इस व्यवस्था पर विचार करना चाहिये। सत्र के मुख्य अतिथि डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल (अध्यक्ष, राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ एवं शैक्षिक मंथन संस्थान) ने बताया कि आज हमें ऐसी परीक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जिसमें प्रश्न-पत्र निर्माण एवं उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्यांकन की समुचित व्यवस्था हो एवं विद्यार्थियों के सभी पक्षों की जाँच की व्यवस्था हो जिससे अच्छे युवकों का निर्माण हो। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुये डॉ. बी.एल. चौधरी (अध्यक्ष, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर) ने बताया कि आज हम स्वयं हमारी परीक्षा प्रणाली को सही नहीं मान रहे तभी तो इन अकादमिक परीक्षाओं के पश्चात् प्रतियोगिता परीक्षाओं का आयोजन हो रहा है। क्या स्कूल स्तर पर ही विद्यार्थी का पूरा मूल्यांकन नहीं होना चाहिये, प्रश्न पत्र निर्माण व उत्तरपुस्तिका मूल्यांकन का परिष्कार कैसे हो एवं संस्कारों के मूल्यांकन की क्या व्यवस्था हो इस पर ध्यान देना है।

संगोष्ठी के प्रथम तकनीकी सत्र का विषय 'प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक परीक्षा एवं सत्रांक' जिसमें विषय प्रवर्तन श्री विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी (उपसंपादक, शैक्षिक मंथन) एवं अध्यक्षता श्री देवलाल गोचर (महामंत्री, रा.शि.संघ राष्ट्रीय)ने की। द्वितीय सत्र का विषय 'प्रश्न-पत्र निर्माण एवं उत्तर पुस्तिका मूल्यांकन थे' जिसका विषय प्रवर्तन श्री राम बाबू गुप्ता (पूर्व मुख्य परीक्षा नियंत्रक, मा.शि. बोर्ड राजस्थान, अजमेर) एवं अध्यक्षता श्री रामावतार जी ने की। तृतीय सत्र का विषय 'परीक्षा प्रणाली एवं सह शैक्षिक गतिविधियाँ' था जिसमें विषय प्रवर्तन श्री मोहन पुरोहित (सचिव, मा.शि.वि. अ.भा.रा.शै.महासंघ) एवं अध्यक्षता श्री प्रहलाद शर्मा (अध्यक्ष, रा.शि. संघ राष्ट्रीय) ने की। चतुर्थ सत्र का विषय 'परीक्षा के मनोवैज्ञानिक पक्ष' का था जिसकी विषय प्रवर्तन डॉ. सुमन बाला जी (व्याख्याता मनोविज्ञान, शि.प्र.म.वि. हटुण्डी, अजमेर) एवं अध्यक्षता श्री बजरंग प्रसाद मजेजी (कोषाध्यक्ष, शै.मंथन संस्थान) पंचम सत्र का विषय 'सतत् एवं समग्र मूल्यांकन' था जिसका विषय प्रवर्तन श्री दयाराम जी महरिया (सेवानिवृत्त जि. शि. अ. प्रा.शि. जयपुर) एवं अध्यक्षता डॉ. भरत राम कुम्हार (पूर्व अध्यक्ष, मा.शि.बोर्ड) ने की। उक्त सभी तकनीकी सत्रों में संगोष्ठी में सम्मिलित प्रतिभागियों ने सक्रिय रहकर अपने विचार व्यक्त किये।

समापन सत्र में द्वि-दिवसीय संगोष्ठी का सम्पूर्ण वृत्त श्री विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी ने प्रस्तुत किया। विशिष्ट अतिथि मा. हनुमान सिंह राठौड़ ने बताया कि शिक्षा व्यवस्था में अभी भी बहुत से अच्छे लोग हैं जो उत्कृष्ट कार्य कर रहे हैं अत: हमें सकारात्मकता के साथ परीक्षा प्रणाली के परिष्कार का कार्य करना चाहिये। मुख्य अतिथि प्रो. जे.पी. सिंघल (कुलपति, राज. विश्वविद्यालय एवं महामंत्री, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ) ने बताया कि सत् से ही सत की और हम बढ़ सकते हैं। अत: हम अच्छाइयों को स्थापित करें। हमारी शिक्षा केवल सूचना प्रधान न बनें अत: इसमें ज्ञान का समन्वय करने की व्यवस्था हो। हिन्दू धर्म एवं दर्शन में तर्क से ज्ञान दिया जाता है। अत: विद्यार्थी के मूल्यांकन की भी यही पद्धति होनी चाहिये। अध्यक्षीय उद्बोधन में डॉ. बी.एल. चौधरी ने विद्यार्थी को संस्कारवान बनाने व पाठ्यक्रम एवं उचित मूल्यांकन पद्धति के विकास के लिये माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर द्वारा हर संभव प्रयत्न करने एवं भविष्य में इस प्रकार की ओर संगोष्ठियाँ आयोजन कर परिष्कार करने की बात कही। संगोष्ठी संयोजक श्री भरत शर्मा ने बताया कि संगोष्ठी के वैचारिक बिन्दुओं व सुझावों को समेकित कर सुझाव पत्रक के माध्यम से सरकार को प्रेषित किये जायेंगे। धन्यवाद श्री राजेन्द्र गुप्ता (जनसंपर्क अधिकारी मा.शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर) ने ज्ञापित किया।

उद्घाटन सत्र में मंचासीन महानुभावों में डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल, मुख्य अतिथि, श्री हनुमान सिंह राठौड़ आधार भाषण, डॉ. बी.एल. चौधरी (अध्यक्ष मा. शिक्षा बोर्ड), श्री महेन्द्र कपूर (संगठन मंत्री अखिल भारतीय शैक्षिक महासंघ एवं सचिव शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर) थे।

समारोप सत्र के मंचासीन महानुभावों में विशिष्ट अतिथि मा. हनुमान सिंह राठौड़, मुख्य अतिथि प्रो. जे.पी. सिंघल (कुलपति, राज. विश्वविद्यालय, एवं महामंत्री, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ) श्री महेन्द्र कपूर (संगठन मंत्री अखिल भारतीय शैक्षिक महासंघ एवं सचिव शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर), डॉ. बी.एल. चौधरी (अध्यक्ष मा. शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर) श्री भरत शर्मा (संगोष्ठी संयोजक व उप सम्पादक, शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर) रहे।

AJKLTF Celebrated Guruvandan Karyakram

All Jammu Kashmir and Ladakh Teachers Federation under the banner of Akhil Bhartiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh, Udhampur unit of Jammu and Kashmir State celebrated on 31 July, 2016 at Udhampur Guru-vandan Karyakram in which the teachers, students, eminent educationists and citizens participated.

In this programme Sh Rattan Chand Sharma State General Secretary was the chief spokesperson and Sh Maheshwar Prasad State Working President was the Chief Guest during the occasion .

Shaikshik Mahasangh celebrates Guruvandan programme during 'Gurupurnima' all over the country every year. The same programme was celebrated by the Udhampur unit of the Federation.

The programme was started by lighting of the traditional lamp and flowering on the pictures of Maharishi Ved Vyas ji, Saraswati ji and Bharat mata by the Chief guests. The students of Bhartiya Vidya Mandir High School Udhampur sang Saraswati Bandhana.

Sh Rattan Chand Sharma State Gen Secy as a chief Spokesperson said that on the main purpose to celebrate Guruvandan karyakram is to uphold and preserve the thousands of years old Indian Guru values, culture and tradition,which developed Ancient India as a model society .Since time immemorial, the Gurus/Teachers/Acharyas always kept the nation ahead by giving effective education based on Indian tradition, culture and values .Due to the hard and tough work of our Gurus.

Sh. Maheshwar Prasad, State working President was chief guest adressed the participants during the occasion. He said that the level and standard of education degraded during the British rule and even after Independence, it also degraded a lot and no sincere steps were taken by the Governments. The Politicians and bureaucrats considered teachers as a machine and deputed teachers in various others non teaching jobs .

The programme was concluded with Vande Mataram which was presented by the students of Bharatiya Vidya Mandir High School Udhampur.

UGC Regulations should be Teacher Friendly: KRMSS

The New UGC Regulations should cater to the demands of education and educators. It was the opinion of majority of the teachers participated in the discussion on New UGC Regulations and Pay Scales organized by Karnataka Rajya Mahavidyala Shaikshik Sangha (KRMSS) at P C Jabin Science College Hubli. It is opined that UGC Regulations 2010 has undergone many amendments because of ambiguous rules and regulations on the appointment and CAS system. Dr Raghu Akamanchi, the President of KRMSS felt that there is need for redefining the role of teachers in higher education. Teachers are losing respect because education is considered as a secondary issue. He demanded a comprehensive higher education policy which is teacher friendly and student friendly. Dr. Gurunath Badiger, the Vice President of KRMSS spoke on the Performance Based Appraisal System (PBAS) and the anomalies. He demanded that the regulations regarding research in colleges be flexible as there is scope for research at the college level. There is need to simplify appraisal of teacher's performance. Mr Prasanna Pandhari presented views on minimum qualifications for appointment of Assistant professors, asscociate professors and professors in colleges and universities. He opined that NET/SLET/SET should be compulsory qualification for appointment of Assistant Professors. Some of the participants suggested Ph,D should be considered equivalent to NET/SLET/SET. Dr. B S Tallur gave a presentation on Working conditions in colleges. He said many colleges are not encouraging research and grant sabbatical or duty leave for academic activities. He also spoke on latest amendments to UGC regulation in July 2016. Prof. N A Upadhye spoke on UGC payscales. He demanded that there needs to be higher scales than other central services as teachers are not entitled for other benefits like IAS officers. He asked for vertical more promotions. The post of principal need not be based on research as it does not demand research skills. There can be a post of professor higher than the scales of principal.

It was also decided to form committees of teachers and provide opinion which can be sent to the concerned committee constituted for pay revisions.